ग्यारहवाँ पुष्प-

ब्रह्मविलास

(परमानन्द स्तोत्र-स्वरुप सम्बोधन-श्री बाहुबली काव्य)

श्री गोम्मटेश्वर बाहुबली के २२ फरवरी १९८१ के महामस्तकाभिषेक के शुभावसर पर श्रीमती शीला देवी जैन धर्मपत्नी श्री आनन्द स्वरुप जैन, खतौली [मुजफ्फरनगर] उत्तर प्रदेश द्वारा प्रकाशित

वीर निर्वाण
सं० २५०७

सदुपयोग

दो शब्द

भैया भगवतीदास कृत ब्रह्मविलास का प्रकाशन स्व० श्री नाथूराम जी प्रेमी ने जैन ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय बम्बई से १६०४ में किया था। सन् १६२६ में वहीं से उसका दूसरा संस्करण प्रकाशित हुआ था। उसमें उनकी ६७ रचनाओं का संकलन था। तथा भूमिका मे ग्रन्थकर्ता का परिचयादि भी दिया था।

वह आगरा के निवासी थे और जाति से ओसवाल थे। उनसे पहले कविवर बनारसीदास हुए थे। वे भी ओसवाल थे। भैया भगवतीदास पर भी अध्यात्म का प्रभाव परिलक्षित होता है। वह उर्दू गुजराती के भी जानकार थे। उनकी रचनाओं में उनका प्रभाव कही २ है। उनका चेतन कर्म चरित्र बडा ही रोचक है। चेतन और पुद्गल कर्म के द्वन्द्व का चित्रण बहुत ही आकर्षक है। उससे जीव और कर्म के बन्ध पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। द्रव्य संग्रह का पद्यानुवाद भी उत्तम है। इसी तरह से उनकी सभी रचनाएं, जो इसमें सग्रहीत हैं तत्वज्ञान से और उदबोधन से भरी हुई हैं। उनके पढ़ने से हिन्दी के समझदार पाठकों को शान्तरस की अनुभूति अवश्य होती है। उपादान निमित्त संवाद दोहा छंद में बहुत रोचक हैं। उसे पढ़कर पाठक दोनों की यथार्थ स्थिति जान लेता है। इसी तरह कर्ता कर्म पचीसी आदि भी बहुत उपयोगी हैं। १७-१८वी शताब्दी मे आगरा के हिन्दी ग्रन्थकारों ने अपनी अध्यात्म प्रेरित रचनाओं से जैन भारती के भण्डार को समृद्ध बनाया है और पाठकों में अध्यात्म की ज्योति को प्रदीप्त किया है। इस द्रष्टि मे उनका महान उपकार है। वे सभी जैन सिद्धान्त के ज्ञाता सच्चे जिनधर्मी थे। उनकी रचनाएँ किसी शास्त्र से कम महत्वपूर्ण नही है।

यह ब्रह्म विलास अनुपलब्ध था। शास्त्र स्वाध्याय के प्रेमी आनन्द स्वरूप जी ने उसे प्रकाशित कराने की प्रेरणा देकर एक उत्तम कार्य किया है। ब्रह्म विलास के अन्त में परमानन्द स्त्रोत, स्वरूप सम्बोधन और बाहुबली काव्य भी सलग्न है श्री गोम्मटेश्वर बाहुबली के महामस्तकाभिषेक के अवसर पर आनन्द स्वरूप जी की धर्मपत्नी श्रीमती शीला देवी की ओर से प्रकाशित यह ग्रन्थ अध्यात्म प्रेमियों के लिए अवश्य ही लाभदायक होगा। हम आनन्द स्वरूप जी की इस भावना का समादर करते हुए भैया भगवती दास के प्रति भी समादर प्रकट करते हैं जिन्होंने हिन्दी भाषा के पद्यों में गागर में सागर भरने का शुभ कार्य किया है वह अपने घट में ही परमात्मा को खोजने की प्रेरणा करते हुए कहते हैं

'या ही देह देवल में केवलि स्वरूप देव
ताकर सेव मन कहाँ दौड़े जात है।'

हे भाई ! तुम इधर उधर क्यों दौड़ते फिरते हो, शुद्ध दृष्टि से देखने पर परमात्मा तुम्हें अपने-अपने घट के भीतर ही दिखाई देगा।

आगे वह कहते हैं—
'देव वहै गुरु है वहै, शिव वहै बसइया।
त्रिभुवन मुकुट वहै सदा चेतो चितवइया॥'

वही देव, गुरु, मोक्ष का वासी और तीनों लोकों का मुकुट है। हे चेतन। सावधान होकर अपने को निरखो।'

कैलाशचन्द्र शास्त्री
वाराणसी

आद्य निवेदन

ब्रह्म स्वरूपी आतमा रहे ब्रह्म गुणलीन
ब्रह्मचर्य में रत रहे यही भाव प्राचीन

लगभग दो वर्ष पूर्व हस्तलिखित ब्रह्मविलास का प्रवचन शास्त्र सभा में करने का सोभाग्य प्राप्त हुआ। श्रोतागण सुनकर मंत्र मुग्ध थे। ग्रन्थ की मुख्य विशेषता इसकी सरल भाषा है। आध्यात्मिक कथन अत्यन्त रोचक है। यह ग्रन्थ वर्तमान समय में अनुपलब्ध था। तभी से इसे प्रकाशित कराने के विचार थे। ग्रन्थ में ब्रह्मविलास, परमानन्द स्त्रोत एवम् स्वरूप सम्बोधन सम्मिलित हैं। भगवान गोमटेश्वर बाहुबली के महामस्त-काभिषेक के महान अवसर पर स्वरचित बाहुबली काव्य भी पाठकों के उपयोग के लिए दिया गया है। यह अत्यन्त सरल भाषा में आगम अनुकूल लिखा गया है।

जैन जगत के "लब्ध प्रतिष्ठित विद्वान आदरणीय पं० कैलाशचन्द जी वाराणसी ने ग्रन्थ में" दो शब्द" में सब कुछ लिखकर इसका महत्व बढ़ा दिया है। उसके लिए धन्यवाद। पं० जी को निर्भयता एव निस्वार्थता के विषय में मैं क्या लिखूं ? वह तो सर्व विदित ही है।

त्रय योग की शुद्धि का उपाय है आर्जव धर्म
स्वाध्याय है परम तप नष्ट हो आठो कर्म

आनन्द स्वरूप जैन
२२ फरवरी १६८१ खातौली (मुजफ्फरनगर)

卐 ग्रन्थ विषय सूची 卐

जयभारत प्रिंटिंग प्रेस, वैस्ट रोहतास नगर, शाहदरा दिल्ली-११००३२

स्वर्गीय कविवर भैया भगवतीदासकृत

ब्रह्मविलास

पुण्यपचीसिका.

मङ्गलाचरण, छप्पय.

प्रथम प्रणमि अरहंत, बहुरि श्रीसिद्ध नमिज्जै ।
आचारज उवझाय, तासु पद वंदन किज्जै ॥
साधु सकल गुणवंत, शान्त मुद्रा लखि वंदों ।
श्रावक प्रतिमा धरन चरन नमि पाप निकंदों ॥
सम्यकवंत स्वभाव धर, जीव जगतमहि होंहि जित ।
तित तित त्रिकाल वंदित 'भविक[1]' भावसहित शिर नाय नित।१।

श्रीजिनेंद्रस्तुति । छप्पय ।

मोहकर्म जिन हरयो, करयो रागादिक नष्टित ।
द्वेष सर्व परिहरयो, जागि क्रोधहि किय भिष्टित ॥
मानमृदता हरिय, दरिय माया दुखदायिन ।
लोभ लहरगति गरिय, खरिय प्रगटी जु रसायिन ॥
केवल पद अवलंबि हुव, भवसमुद्रतारनतरन ।
त्रयकाल चरन वंदत 'भविक' जयजिनंद तुह पयसरन ॥२॥

टिप्पणी १–भविक-शब्द से कवि ने अपना [illegible] है ।

श्रीसिद्धस्तुति, छप्पय.

अचल धाम विश्राम, नाम निहचै पद मंडित ।
यथाजात परकाश, बास जहँ सदा अखंडित ।।
भासहि लोकालोक, थोक सुख सहज विराजहि ।
प्रणमहि आपु सहाय, सर्वगुणमंदिर छाजहिं ।।
इह विधि अनंत जिय सिद्धमहिं, ज्ञानप्रान विलसंत नित ।
तिन तिन त्रिकाल वंदत 'भविक' भावसहित नित एकचित ।।३।।

श्रीआचार्यजीकीस्तुति, छप्पय.

पंच परम आचार, ताहि धारहिं आचारज ।
ज्ञान चार संयुक्त, करत उत्तम सब कारज ।।
देत धर्म उपदेश, हेत भविजीय विचारत ।
जिनबानी जो खिरत, सु तौ निज हिरदै धारत ।।
कहत अर्थ परकाशकें, केवलपद महिमा लखत ।
जुगलाभुमध्य परधानपद, आचारज अमृत चखत ।।४।।

श्रीउपाध्यायस्तुति, कवित्त.

द्वादशांगवानी सुबखानी वीतराग देव, जानी भव्य जीवन अनादिका कहानी है । ताके पाठ करिवेको भेद हृदै धरिवेको, अर्थके उचरिवेको पंडित प्रमानी है ।। पर समुझायवेको ज्ञान उपजायवेको, रूपके रिझायवेको निपुण निदानी है । याहीतें प्रमाण मानी सत्य उवझायवानी, 'भैया' यों बखानी जाकी मोक्षबधू रानी है ।। ५ ।।

श्रीमुनिराजकी स्तुति.

दहिकै करम-अघ लहिकें परम मग, गहिकें धरम ध्यान ज्ञानकी लगन है । शुद्ध निजरूप धरै परसों न प्रीति करै, बसत शरीरपै

अलिप्त ज्यों गगन है ॥ निश्चै परिणाम साधि अपने गुणें अराधि, अपनी समाधिमध्य अपनी जगन है । शुद्ध उपयोगी मुनि राग-द्वेष भये शून्य, परसों लगन नाहि आपमें मगन हैं ॥ ६ ॥

श्रावकप्रशंसा.

मिथ्यामतरीत टारी, भयो अणुव्रतधारी, एकादश भेद भारी हिरदै बहतु है । सेवा जिनराजकी है, यहै शिरताजकी है, भवित मुनिराजकी है चित्तमें चहतु है । बीसद्वै निवारी रिनि भोजन न अक्षप्रीति, इंद्रिनिको जीति चित्त थिरता गहतु है । दयाभाव सदा धरै, मित्रता प्रगट करै, पापमलपंक हरै मुनियों कहतु है ॥७॥

सम्यक्त्वकी महिमा.

भीथिति निकंद होय कर्मबंध मंद होय, प्रगटै प्रकाश निज आनँदके कंद को । हितको दृढाव होय बिनैको बढाव होय, उपजै अंकूर ज्ञान द्वितीया के चंदको ॥ सुगति निवास होय दुर्गतिको नाश होय, अपने उछाह दाहकरै मोहफंदको । सुख भरपूर होय दोष दुख दूर होय, यातै गुणवृंद कहैं सम्यक सुछंदको ॥८॥

श्रीजिनेन्द्रदेव की प्रतिमाको नमस्कार, छप्पय.

प्रथम प्रणमि सुरलोक, जहां जिनचैत्य अकृत्रिम ।
चैत्य चैत्य प्रति बिंब, एकसो आठ अनूपम ॥
बहुरि प्रणमि मृतलोक, बिम्ब जिनके जिहँ थानक ॥
कृत्य अकृत्रिम दुविधि, लसै प्रतिमा मनमानक ॥
पाताल लोक रचना प्रबल, तिहँ थानक जिनबिंब विदित ।
तहँ तहँ त्रिकाल वंदित 'भविक भावसहित शिर नाय नित ॥९॥

सम्यग्दृष्टिकी महिमा, कवित्त,

स्वरूप रिझवारेसे सुगुण मतवारेसे, सुधाके सुधारेसे, सुप्राण दयावंत हैं। सुबुद्धिके अथाहसे सुरिद्धपातशाहसे, सुमनके सनाहसे महाबडे महंत हैं। सुध्यानके धरैयासे सुज्ञानके करैयासे सुप्राण परखैयासे शकती अनंत है। सबै संघनायकसे सबै बोललायकसे सबै सुखदायकसे सम्यकके संत हैं ॥१०॥

सवैया.

काहेको कूर तु क्रोध करै अति, तोहि रहैं दुख संकट घेरें।
काहेको मान महा शठ राखत, आवत काल छिनै छिन नेरे ॥
काहेको अंध तु बंधत मायासों, ये नरकादिकमें तुहे मेरें ।
लोभ महादुख मूल है 'भैया' तु चेतत क्यों नहि चेत सवेरे॥११॥

कवित्त.

जेते जग पाप होंहि अधरमके व्याप होंहि, तेते सब कारजको मूल लोभकूप है। जेते दुखपुंज होंहि कर्मनके कुंज होंहि, तेते सब बंधनको मूल नेहरूप है ॥ जेते बहु रोग होंहि व्याधिके संयोग होंहि, तेते सब मूलको अजोरन अनूप है। जेते जग मर्ण होंहि काहूकी न शर्ण होंहि, तेते सब रूपको शरीर-नाम भूप है ॥१२॥

ज्ञानमें है ध्यानमें है वचन प्रमाणमें है, अपने सुथानमें है ताहि पहचानिरे। उपजै न उपजत मूए न मरत जोई, उपजन मरन व्योहार ताहि मानिरे। रावसो न रंकसो है पानीसो न पंकसो है, अति ही अटंकसो है ताहि नीके जानिरे। आपनो प्रकाश करै अष्टकर्म नाश करै, ऐसी जाकी रीति 'भैया' ताहि उर आनिरे ॥१३॥

सेर आध नाजकाज अपनों[1] करै अकाज, खोवत समाज सब

(१) अनाज, अन्न।

राजनितें अधिके । इंद्र होतो चंद्र होतो नरनागइन्द्र होतो करत तपस्या औषैं पैठि साधुमधिकें ।। इन्द्रिनको दम होतो 'यम[1]' ओ नियम होतो, जमको न गम होतो ज्ञान होतो अधिकें । लोकालोक भास होतो अष्टकर्म नाश होतो, मोखमें सुवास होतो चलतो जो सधिकें ।।१४।।

सवैया.

काहेको कूर तु भूरि सहै दुख, पंचनके परपंच[2] भवाये[3] ।
ये अपने अपने रसको नित पोखतु हैं तोहि लोभ लगाये ।।
तू कछु भेद न बूझतु रंचक, तोहि दगा करि देत बँधाये ।।
है अबके यह दाव भलो नर[4]! जीत ले पंच जिनंद बताये।१५।
हे नर[5] अंध तु बंधत क्यों निज, सूझत नाहिं कै भंग खई है ।
जे अघ संचतु है नित आपको, ते तोहि सौंज करैंगे गई है ।।
ये नरकादिकमें तोहि डारिके, देहैं सजा बहु ऐसो भई है ।
मानत नाहिं कहूं समुझाय, सु तोकों दई मति ऐसी दई है।।१६।।

कबित्त.

धूमनके धौरहर देख कहा गर्व करै, ये तो छिनमाहिं जाहिं पौन परसत ही । संध्याके समान रंग देखत ही होय भंग, दीपकपतंग जैसें काल गरसत ही ।। सुपनेमें भूप जैसें इंद्रधनुरूप जैसें, ओसबूंद धूप जैसें दुरै दरसत ही । ऐसोई भरम सब कर्मजालवर्गणाको, तामें मूढ मग्न होय मरै तरसत ही ।।१७।।

(१) दूर सब तम होतो-ऐसा भी पाठ है. (२) इंद्रियनिके । (३) बहकावे.
(४) 'तोहि' ऐसा भी पाठ है । (५) 'शठ' ऐसा भी पाठ है.

मात्रिक कवित्त.

देखहु दृष्टि विचार अभ्यंतर, या जगमहिं कछु सांचो आह ।
मात तात सुत बन्धव वनिता, इनसों प्रीति करै किम चाह ॥
तन यौवन कंचन औ मंदिर, राजरिद्ध प्रभुता पद काह ।
ये उपजें अपनी थितिसंजुत, तूं किम नाथ होहि शठ ताह॥१८॥

कवित्त.

संसारी जीवनके करमनको बंध होय, मोहको निमित्त पाय रागद्वेषरंगसों । वीतराग देवपै न रागद्वेष मोह कहूं, ताहीतें अबंध कहे कर्मके प्रसंगसों ॥ पुग्गलकी क्रिया रही पुग्गलके खेतबी, आपहीतें चलै धुनि अपनी उमंगसों । जैसे मेघ परै विनु आप निज काज करै, गर्जि वर्षि झूम आवे शकति सु-छंगसों ॥१९॥

मात्रिक कवित्त.

आतम सूवा[1] भरममांहि भूल्यो कर्म-नलिनपै बैठो आय ।
विषयस्वादविरम्यो इह थानक, लटक्यो तरें ऊर्ध्व भये पांय॥
पकरै मोहमगन चुंगनसों, कहै कर्मसों नाहिं बसाय ।
देखहु किं नहिं सुविचार भविक जन,जगत जीव यह धरैस्वभाय२०
तौलों प्रगट पूज्यपद थिर है, तौलों सुजस लहै परकास ॥
तौलों उज्जल गुणमणि, स्वच्छित, तौलों तपनिर्मलता पास ॥
तौलों धर्मवचन मुख सोभत, मुनिपद ऐसे गुनहिं निवास ।
जौलों रामसहित नहिं देखत, भामनिको मुखचंद विलास॥२१॥

कवित्त.

जो पै चारों वेद पढे रचि पचि रीझ रीझ, पंडित की कलामें, प्रवीन तू कहायो है । धरम व्योहार ग्रन्थ ताहू के अनेक भेद,

१—शुक, तोपट, राघू ।

ताके पढे निपुण प्रसिद्ध तोहि गायो है ॥ आतमके तत्त्वको निमित कहूं रंच पायो, तोलों तोहि ग्रन्थनिमें ऐसे के बतायो है । जैसे रसव्यञ्जनमें करछो फिरै सदीव, मूढतास्वभावसों न स्वाद कछु पायो है ॥ २२ ॥

सवैया.

चेतन ऐसेनें चेतत क्यों नहि, आय बनो सबही विधि नीकी ।
है नरदेह यो आरज खेत, जिनंदकी बानि सु बूंद अमीकी ॥
तामें जु आप गहो थिरता तुम, तौ प्रगटै महिमा सब जीकी ।
जामें निवास महासुखवास सु, आयमिलै पतियां शिवतीकी॥२३

कवित्त.

ग्रीषममें धूप परै तामें भूमि भारी जरै, फूलत है आक पुनि अतिही उमहिकें वर्षाऋतु मेघ झरै तामें वृक्ष केई फरै, जरत जमासा अघ आपुहीतें डहिकें ॥ ऋतुको न दोष कोऊ पुण्य पाप फलै दोऊ, जैसें जैसें किये पूर्व तैसें रहै सहिकें । केई जीव सुखी होंहि केई जीव दुखी होंहि, देखहु तमासो 'भैया' न्यारे तेंकु रहिकै ॥ २४ ॥

दोहा.

पुण्य ऊर्ध्व गतिको करै, निश्चै भेद न कोय ।
तातें पुण्यपचीसिका, पढे धर्मफल होय ॥ २४ ॥
सत्रहसे तेतीसके, उत्तम फागुन मास ।
आदि पक्ष नमि भावसों, कहै भगौतीदास ॥ २५ ॥

इति पुण्यपचीसिका ॥ १ ॥

—: ० :—

अथ अष्टोत्तरी कवित्तबन्ध लिख्यते ।

दोहा.

ओंकार गुण अति अगम, पँचपरमेष्टि निवास ।
प्रथम तासु वंदन किये, होवत[1] ब्रह्मविलास ॥ १ ॥

छप्पय.

द्रव्य एक आकाश, जासुमहिं पंच विराजत ।
द्रव्य एक चिद्रूप, सहज चेतनता राजत ॥
द्रव्य एक पुनि धर्म, चलन सबको सहकारी ।
द्रव्य सु एक अधर्म, रहन थिरता अधिकारी ॥
द्रव्य एक पुग्दल प्रगट, अरु अंतक[2], षट मानिये ।
निज निज सुभावमें सब मगन, यह सुबोध उर आनिये ॥२॥
जीव ज्ञानगुण धरै, धरै मूरतिगुण पुग्दल ।
जीव स्वपर करि भेद, भेद नहिं लहै कर्ममल ॥
जीव सदा शिवरूप, रूपमें दर्वसु औरें ।
जीव रमै निजधर्म, धर्मपर लहै न ठौरें ।
जीव दर्व चेतनसहित, तिहूं काल जगमें लसै ।
तसु ध्यान करत ही भव्य जन, पंचमि गति पलमें बसै॥३॥
रसनाके रस मीन, प्राण पलमाहि गमावै ।
अलि नासा परसंग, रैन बहु संकट पावै ॥
मृग करि श्रवण सनेह, देह दुरजनको दीनी ।
दीपक देख पतंग, दृष्टि हित कैसी कीनी ॥
फरसइंद्रिवस करि परसो. कौन कौन संकट सहे ।
एक एक विषबेलिसम, पंचन सेय तु सुख चहै ॥ ४ ॥

---

(१) 'लहिये' — ऐसा भी पाठ है. -(२) काल द्रव्य ।

चेतु चेतु चित चेतु, विचक्षण बेर यह ।
हेतु हेतु तुअ हेतु, कहतु हों रूप गह ।।
मानि मानि पुनि मानि, जनम यहु बहुरि न पावै ।
ज्ञान ज्ञान गुन जान, मूढ क्यों जन्म गमावै ।।
बहु पुण्य अरे नरभौ मिल्यो, सो तू खोवत बावरे ।
अजहू संभारि कछु गयो नहि 'भैया' कहत यह दावरे ।।५।।

कवित्त.

जैसो वीतराग देव कह्यो है स्वरूपसिद्ध, तैसो ही स्वरूप मेरो यामें फेर नाही है । अष्टकर्म भावकी उपाधि मोमे कहूं नाहि, अष्ट गुण मेरे सो तौ सदा मोहि पांहि है ।। ज्ञायक स्वभाव मेरो तिहू काल मेरे पास, गुण जे अनन्त तेऊ सदा मोहि माहीं है । ऐसो है स्वरूप मेरी तिहू काल सुद्धरूप, ज्ञानदृष्टि देखतै न दूजी परछांही है । ।।६।।

त्रिकट भौसिंधु ताहि तरिवेको तारू कौन, ताकी तुम तीर आये देखो दृष्टि धरिकै । अबके संभारेतैं पार भले पहुँचत हौं, अबके संभारे विन बूडत हो तरिकै ।। बहुरयो फिर मिलबो नाहि ऐसो है प्रयोग यह, देव गुरु ग्रन्थ करि आये हिय धरि कैं । ताहि तू विचारि निज आतम निहारि 'भैया' धारि परमातमाहि शुद्ध ध्यान करिकै ।।७।।

जो पै तोहि तरिवेकी इच्छा कछू भई 'भैया' तौ तौ वीतरागजूके वच उर धारिये । भौसमुद्रजलमें अनादि ही तैं बूडत हो, जिननाम नौका मिली चित्ततैं न टारिये ।। खेवट विचारि शुद्ध थिरतासों ध्यान काज, सुखके समूह को सुदृष्टिसों निहारिये । चलिये जो इह पंथ मिलिबे स्यों मारगमें, जन्मजरामरननके भयको निवारिये ।।८।।

ज्ञानप्रान तेरे ताहि नेरे तौ न जानत हो, आनप्रान मानि आनरूप मानि रहे हो। आतमके बंशको न अंश कहूं खुल्यो कीजै, पुग्गल के वंशसेती लागि लहलहे हो॥ पुग्गलके हारे हार पुग्गलके जीते जीत, पुग्गलकी प्रीति संग कैसें बहबहे हो। लागत हो धायधाय लागै न उपाय कछू, सुनो चिदानंदराय कौन पंथ गहे हो ॥९॥

छंद द्रुमिला।

इक बात कहूं शिवनायकजी, तुम लायक ठौर, कहाँ अटके।
यह कौन विचक्षन रीति गही, विनु देखहि अक्षनसों भटके॥
अजहूं गुण मानो तौ शीख कहूं, तुम खोलत क्यों न पटै घटके।
चिनमूरति आपु विराजतु है, तिन सूरत देखे सुधा गटके ॥१०॥

सवैया.

शुद्धितें[1] मीन पियें पय बालक, रासभ अंग विभूति लगायें।
राम कहे शुक ध्यान गहे बक भेड तिरैं पुनि मूंड मुडायें॥
वस्त्र विना पशु व्योम चलैं खग, व्याल तिरैं नित पौनके खायें।
ए तौ सबै जड रीत विचक्षन! मोक्ष नहीं विन तत्व के पायें॥११॥
कर्म स्वभावसों तांतोसो[2] तोरिकें, आतम लक्षन जानि लये हैं।
ध्यान करैं निहचै पदको जिहँ, थानक और न कोऊ ठये हैं॥
ज्ञान अनंत तहां प्रतिभासत, आपु ही आपु स्वरूप छये हैं
और उपाधि पखारिकें चेतन, शुद्ध रये तेउ सिद्ध भये हैं ॥१२॥
देखत रूप अनूप अनूपम, सुन्दरता छवि रीझिकें मोहै।
देखत इन्द्र नरेन्द्र महामुनि, लच्छिविभूषण कोटिक सोहै॥

(१) जलकी शुद्धि. (२) तांतो अर्थात् ततु।

देखत देव कुदेव सबै जग राग विरोध धरै उर दो है। ताहि विचारि विचक्षन रे मन! द्वै पल देखु तौ देखत को है॥१३॥

कवित्त.

सुनो राय चिदानंद कहोजु सुबुद्धि रानी, कहैं कहा बेर बेर नेकु तोहि लाज है। कैसी लाज कहो कहां हम कछू जानत न, हमें इहाँ इंद्रनिको विषै सुख राज है॥ अरे मूढ विषै सुख से ये तू अनन्ती वेर, अज हूं अघायो नहि कामी शिरताज है। मानुष जनम पाय आरज सुखेत आय, जो न चेतै हंसराय तेरो ही अकाज है॥१४॥

सुनो मेरे हंस एक बात हम सांची कहैं, कहो क्यों न नीके कोउ मुखहू गहतु है। तुम जो कहत देह मेरी अरु नीकै राखों, कहो कैसें देह तेरी राखी ये रहतु है॥ जानि नाहि पांति नाहि रूपरंग भांति नाहिं, ऐसें झूठ मूठ कोउ झूटोहू कहतु है। चेतन प्रवीन ताई देखी हम यह तेती, जानि हो जु जब ही ये दुखको सहतु है॥१५॥

सुनो जो सयाने नाहु देखो नेकु टोटा लाहु, कौन विवसाहु, जाहि ऐसें लीजियतु है। दश द्योस[1] विषैसुख ताको कहो केतो दुख, परिकें नरकमुख कोलों सीजियतु है॥ केतो काल बीत गयो अजहू न छोर लयो, कहूं तोहि कहा भयो ऐसे रीझियतु है। आपु ही विचार देखो कहिवेको कौन लेखो, आवत परेखो तातें कह्यो कीजियतु है॥१६॥

मानत न मेरो कह्यो मान बहुतेरो कह्यो, मानत न तेरो गयो कहो कहा कहिये। कौन रीझि रीझि रह्यो कौन बूझ बूझ रह्यो, ऐसी बातें तुमें यासों कहा कहीं चहिये। एरी मेरी रानी तोपों कौन है सयानी सखी, ए तौ बापुरी[2] विरानी तू न रोस गहिये।

(१) दिन. (२) दीन संबोधन।

इनसों न नेह मोहि, तोहिसों सनेह बन्यों, रामकी दुहाही कहूं तेरे गेह रहिये ॥१७॥

जीवन कितेक तापै सामा तू इतेकु करै, लक्ष कोटि जोर जोर नैकु न अघातु है। चाहत धराको धन आन सब भरों गेह, यों न जानैं जनम सिरानो मोहि जातु है ॥ कालसम क्रूर जहां निश-दिन घेरो करै, ताके बीच शशा जीव कोलों ठहरातु है। देखतु है नैननिसों जग सब चल्यो जात, तऊ मूढ चेते नाहिं लोभै ललचातु है ॥१८॥

कहां हैं वे वीतराग जीते जिन रागद्वेष, कहां हैं वे चक्रवर्ति छहो खंडके धनी। कहां हैं वे वासुदेव युद्धके करैया वीर, कहां हैं वे कामदेव कामकीसी जे अनी ॥ कहां हैं वे राजा राम रावन से जीते जिन, कहां हैं वे शालिभद्र लच्छि जाके थी घनी। ऐसे तो कईक कोटि ह्वै गये अनंती बेर, डेढ दिन तेरी वारी काहेको करै मन ॥१९॥

सुनिरे सयाने नर कहा करै घरघर, तेरो जु शरीरघर घरी ज्यों तरतु है। छिनछिन छीजे आय जल जैसें घरी जाय, ताहूको इलाज कछु उरहू धरतु है ॥ आदि जे सहे हैं ते तौ यादि कछु नाहिं तो-हि, आगे कहो कहा गति काहे उछरतु है। घरी एक देखो ख्याल घरीकी कहा है चाल, घरी घरी घरियाल शोर यों करतु है॥२०॥

पाय नरदेह कहा कीनों कहा काम तुम, रामारामा धनधन कर-त विहातु है। कैक दिन कैक छिन रहि है शरीर यह, याके संग ऐसें काज करतु सुहातु है ॥ जानत है यह घर मरवेको नाहिं डर देख भ्रम भूलि मूढ फूलि मुसकातु है। चेतरे अचेत पुनि चेतबे को नाहिं ठौर, आज कालि पींजरेसों पंछी उडजातु है ॥२१॥

कर्मको करैया सो तौ जानै नाहिं कैसे कर्म, भरममें अनादिही-

को करमैं करतु है। कर्मको जनैया भैया सो तौ कर्म करै नाहि, धर्ममांहि तिहूं काल धरमैं धरतु है ॥ दुहूनकी जाति पांति लच्छने स्वभाव भिन्न, कबहूं न एकमेक होइ विचरतु है। जादिनातें ऐसी दृष्टि अन्तर दिखाई दई, ता दिनातें आपु लखि आपु ही तरतु है ॥२२॥

सवैया.

जीव अकर्ता[1] कह्यो परको, परको करता पर ही परवान्यो।
ज्ञाननिधान सदा यह चेतन, ज्ञान करै न करै कछु आन्यो॥
ज्यों जग दूध दही घृत तक्रकी, शक्ति धरै तिहुं काल बखान्यो।
कोऊ प्रवीन लखै दृगसेति सु, भिन्न रहै वपुसों[2] लपटान्यो॥२३॥

मात्रिक कवित्त.

चेतनचिह्न ज्ञान गुण राजत, पुग्दलकै वरणादिक रूप।
चेतन आपरु आन विलोकत, पुग्गल छाँह धरै अरु धूप॥
चेतनकै थिरता गुण राजत, पुग्गलकै जडता जु अनूप।
चेतन शुद्ध सिवालय राजत ध्यावत है शिवगामी भूप॥२४॥

कवित्त.

जीवहू अनादिको है कर्महू अनादिको है, भेदहू अनादिको है सर्व दोऊ दल में। रीझबेको है स्वभाव रीझना ही है स्वभाव, रीझबे को भाव सो स्वभाव है अमलमें॥ सांचेही सो करै प्रीति सांचसों न करीपोति, सांची विधि रीति सो बढ़ाय दई पलमें। ज्ञान गुन काम कीने कामके न काम कीने, ध्यानसें मुकाम कीने बसे आप थलमें ॥२५॥

दासीनके संग खेल खेलत अनादि बीते, अजहूं लों वहै बुद्धि कौन चतुराई है। कैसी है कुरूप कारी निशि जैसें अँधियारी,

(१) ताका उच्चारण ह्रस्व करने से छंद बैठता है।
(२) 'वपुसों' की जगह 'न रहै' ऐसा भी पाठ है।

औगुन गहनहारी कहा जान लई है ॥ इनहीकी संगतिसों संकट अनेक सहे, जानि बूझ भूल जाहु ऐसी सुधि गई है । आवत परेखो हंस, मोहि इन बातनको, चेतनाके नाथको अचेतना क्यों भई है ॥२६॥

कहां कहां कौन संग लागेही फिरत लाल आवो क्यों न आज तुम ज्ञानके महलमें । नैकहू विलोकि देखो अन्तर सुदृष्टिसेती, कैसी कैसी नीकी नारि ठाडी है टहलमें ॥ एकनतें एक बनी सुदर सुरूप घनी, उपमा न जाय गनी वामकी चहलमें । ऐसी बिधि पाय कहू भूलि और काज कीजे, एतो कह्यो मानलीजे बीनती सहलमें ॥२७॥

सवैया.

लाई हों लालन बाल अमोलक, देखहु तौ तुम कैसी बनी है ।
ऐसी कहू तिहुं लोकमें सुन्दर, और न नारि अनेक घनी है ॥
याहितें तोहि कहूं नित चेतन याहूकी प्रीति जु तोसों सनी है ।
तेरी औ राधेकी रीझि अनंत सु मोपैं कहूं यह जात गनी है॥२८॥

कायासी जु नगरी मे चिदानंद राज करै, मायासी जु रानी पै मगन बहु भयो है । मोहसो है फौजदार क्रोधसो है कोतवार, लोभसो वजीर जहां लूटिवेको रह्यो हैं ॥ उदैको जु काजी मानै मानको अदल जानै, कामसेवा कानवीस आइ वाको कह्यो है । ऐसी राजधानीमें अपने गुण भूलि गयो, सुधि जब आई तबै ज्ञान आय गह्यो है ॥२९॥

सवैया

कौन तुम कहां आये कौने बौराये तुमहि, काके रस रसे कछु सुधहू धरतु हो । कौन हैं ये कर्म जिन्हे एकमेक मानि रहे, अजहूं न लागे हाथ भांवरी भरतु हो । वे दिन चितारो जहां बीते है

अनादिकाल, कैसे कैसे संकट सहेहु बिसरतु हो। तुम तो सयाने पैं सयान यह कौन कोन्हो, तोनलोकनाथ ह्वै के दोनसे फिरतु हो ॥३०॥

देख कहा भूलि परयो देख कहा भूलि परयौ, देख भूलि कहा करयो हरयो सुख सब ही। ज्ञान है अनंत ताहि अक्षर अनन्त भाग, बल है अनंत ताहि देखो क्यों न अब हो ॥ कामवश परे तातें नरकमें बसपरे, ऐसे दुख परे सो कहे न जांहि कब ही। बात जो निगोदकी है तेहू तैंन गोंदकी है, ऐसे अनुमोदकी है जानिहू जो तब ही ॥३१॥

सवैया.

वे दिन क्यों न चितारत चेतन, मातकी कूखमें आय बसे हो।
ऊरध पांव लगे निशिवासर, रंच उसासनिको तरसे हो॥
आउसंयोग बचे कहुं जीवत, लोगनिकी तब दृष्टि लसे हो।
आजु भये तुम जोवनके बस, भूल गये किततें निकसे हो ॥३२॥

कवित्त.

सहे हैं नरकदुख फेर भयो तेही रुख, बेरबेर कहै मुख मैं ही सुख लहा है। जोबनकी जेब भरे जुवति लगावे गरे, करै काम खोटे खरे काम आगि दहा है॥ दिन दश बीति जाय हाथ पीट पछिताय जीवन न ठहराय कीजे अब कहा है। जरा आइ लागी कान भूलिगये अवसान, देखे जमके निसान परयो शोच महा है॥३३॥

जाही दिन जाही छिन अंतर सुबुद्धि लसी ताही पल ताही[1] सहै जीतिसी जगति है। होत है उद्योत तहां तिमिर विलाइ जातु, आपापर भेद लखि ऊरधब गति है॥ निर्मल अतीन्द्री ज्ञान

(१) एक ही अर्थ में दोनों शब्द हैं, इससे अतिशय का ध्वनित होता है।

देखि राय चिदानंद, सुखको निधान याके माया न जगति है। जैसो शिवखेत तैसो देह में विराजमान, ऐसो लखि सुमति स्वाभावमें पगति है ॥३४॥

मात्रिक कवित्त.

जबतें अपनो जिउ आपु लख्यो, तबतें जु मिटो दुविधा मनकी।
यो सीतल चित्त भयो तब ही सब, छांड दई ममता तनकी ॥
चितामणि जब प्रगटयो घरमें, तब कौन जु चाहि करै धनकी।
जो सिद्धमें आपुमें फेर न जानै सो, क्यों परवाह करै जनकी॥३५॥

सवैया.

केवल रूप महा अति सुंदर, आपु चिदानंद शुद्ध विराजै।
अंतरदृष्टि खुलै जब ही तब, आपुही में अपनो पद छाजै ॥
सेवक साहिब कोउ नही जग, काहेको खेद करै किहँ काजै।
अन्य सहाय न कोउ तिहारै जु, अंत चल्यो अपनो पद साजै।३६॥

दोहा.

जा छिन अपने सहज ही, चेतन करत किलोल ॥
ता छिन आन न भास ही, आपहि आपु अडोल ॥३७॥

कवित्त.

पियो है अनादिको महा अज्ञान मोहमद, ताहीतें न शुधि याहि और पंथ लियो है। ज्ञानविना व्याकुल ह्वै जहाँ तहां गिरयो परै, नीच ऊंच ठौरको विचार नाहिं कियो है ॥ बकिबो बिराने बल तनहूकी सुधि नाहिं, बूडै सब कूपमाहिं सुन्नसान[1] हियो है। ऐसे मोहमदमें अज्ञानी जीव भूलि रह्यो ज्ञानदृष्टि देखो भैया कहा ताको जियो है ॥३८॥

देखत ही कहां कहां कैलि करै चिदानंद, आतम स्वभाव भूलि

(१) शून्य अर्थ मे यह शब्द है।

और रस राच्यो है। इन्द्रिनके सुखमें मगन रहै आठों जाम इन्द्रि-नके दुख देखि जाने दुख सांच्यो है ॥ कहूं क्रोध कहूं मान कहूं माया कहूं लोभ; अहंभाव मानि मानि ठौर ठौर माच्यो है ॥ देव तिरजंच नर नारकी गतिन फिरै, कौन कौन स्वांग धरै यह ब्रह्म नाच्यो है ॥ ३९ ॥

करखाछंद (गुजराती भाषा.)

उहिल्या जीवडा हूं तनै शूं कहूं, वली वली आज तुं विषयाविष सेवै विषयना फल अछै विषय थकी पांडुवा ज्ञाननी दृष्टि तूं कां न वेवै हजी शूं सीख लागी नथी कां तनै नरकना दुःख कहिवेको न रेवै। आव्यो एकलो जाय पण एक तू, एटलामाटे कां एटलूं खेवै ॥

कवित्त.

कोउ तौ करै किलोल भामिनीसों रीझि रीझि, बाहीसों सनेह करै कामराग अंगमें। कोउ तौ लहै अनंद लक्ष कोटि जोरि जोरि, लक्ष लक्ष मान करै लच्छिकी तरंगमें। कोउ महाशूरवीर कोटिक गुमान करै, मोसमान दूसरो न देखो कोऊ जंगमें। कहैं कहा 'भैया' कछु कहिवेकी बात नाहिं, सब जग देखियतु रागरस रंगमें ॥४१॥

जौलों तुम और रूप ह्वै रहे हो चिदानंद, तौलो कहूं सुख नाहिं रावरे विचारिये। इन्द्रिनिके सुखको जो मानि रहे सांचो सुख, सो तौ सब दुःख ज्ञानदृष्टिसों निहारिये ॥ ए तौ विनाशीक रूप छिनमें ओरै स्वरूप, तुम अविनाशी भूप कैसें एकु धारिये। ऐसो नरजन्म पाय नैकु तौ विवेक कीजै, आप रूप गहि लीजे कर्मरोग टारिये ॥४२॥

अरे मूढ चेतन अचेतन तू काहे होत, जेई छिन जांहि फिर तेई तोहि आयवी। ऐसो नरजन्म पाय श्रावकके कुल आय,

रह्यो है विषै लुभाय ओंधी मति छाइवी ॥ आगे हू अनादिकाल बीते विपरीत हाल, अजहूं सह्मारि लाल ! बेर भली पाइवी । पीछें पछतायें कछु आइ है न हाथ तेरे, तातें अब चेत लेहु भली परजायबी ॥४३॥

जीवें जग जिते जन तिन्हें सदा रैन दिन, सोचत ही छिन छिन काल छीजियतु है । धन होय धान होय, पुत्र परिवार होय,बडो विसतार होय जस लीजियतु है ॥ देहहू निरोग होय सुखको संयोग होइ मनबांछे भोग होय जौलों जो जियतु है । चहै बांछा पूरी होइ पैन बांछे पूरी होय, आयु थिति पुरी होय, तौलों कीजियतु है ।४४।

मात्रिक कवित्त.

जबलों रागद्वेष नहिं जीतय तबलो, मुकति न पावै कोइ ।
जबलों क्रोध मान मन धारत, तबलों, सुगति कहांते होइ ॥
जबलों माया लोभ बसे उर, तबलो सुख सुपनै नहिं जोइ ।
ए अरि जीत भयो जो निर्मल, शिवसंपति विलसतु है सोइ॥४५॥

कवित्त.

सात धातु मिलन है महादुर्गन्ध भरी, तासों तुम प्रीति करी लहत अनंद हौ । नरक निगोदके सहाई जे करन पंच तिनहीकी सीख संचि चलत सुछंद हौ ॥ आठों जाम गहै काम रागरसरंगराचि, करत किलोल मानों माते ज्यों गयंद हो । कछू तौ विचार करो कहां कहां भूले फिरो, भलेजू भलेजू 'भैया' भले चिदानंद हौ ॥४६॥

सवैया.

ए मन मूढ कहा तुम भूले हो, हंस विसार लगे परछाया ।
यामें स्वरूप नहीं कछु तेरो जु, व्याधिकी पोट बनाई है काया ॥

सम्यक रूप सदा गुण तेरो सु, और बनी सब ही भ्रम माया।
देखत रूप अनूप विराजत सिद्धसमान जिनंद बताया ॥४७॥
चेतन जीव निहारहु अंतर, ए सब हैं परकी जड़ काया ॥
इन्द्रकमान ज्यों मेघघटामहिं, शोभत है पैं रहै नहिं छाया ॥
रैन समै सुपनो जिम देखतु प्रात बहै सब झूंट बताया।
त्यो नदिनाव सँयोगमिल्यो तुम, चेतहु चित्त में चेतन राया॥४८॥
देहके नेह लग्यो कहा चेतन, न्यारी ये क्यों अपनी करि मानी।
याहिसों रीझि अज्ञान में मानिकै, याहीमें आपु न ह्वै रह्यो थानी॥
देखतु है परतच्छ विनाशी, तऊ नहि चेतन अंध अज्ञानी।
होहु सुखी अपनो बल फोरिकैं, मान कह्यो सर्वज्ञ की बानी॥४९॥

सवैया.

केवलरूप विराजत चेतन, ताहि विलोकि अरे मतवारे।
काल अनादि वितीत भयो, अजहूं तोहि चेत न होत कहा रे॥
भूलिगयो गतिको फिरबो अब तौ दिन च्यारि भये ठकुरारे।
लागि कहा रह्यो अक्षनिके संग चेतत क्यों नहिं चेतनहारे[1] ॥५०॥
बालक है तब बालकसी बुधि, जोबन काम हुतासन जारे।
वृद्ध भयो तब अंग रहे थकि, आये हैं सेत गये सब कारे॥
पाँय पसारि परयो धरतीमहिं, रोवै रटै दुख होत महारे।
बीती यों बात गयो सब भूलि तू 'चेतत क्यों नहिं चेतनहारे'॥५१॥
बालपनें नित बालनके सँग, खेल्यो है ताकी अनेक कथारे।
जोबन आप रस्यो रमनी रस, सोउ तौं बात विदीत यथारे॥
वृद्ध भयो तन कंपत डोलत, लार परै मुख होत विथारे।
देखि शरीरके लच्छन भैया तु, 'चेतत क्यों नहिं चेतनहारे' ॥५२॥

(१) समयसारमें 'चेतत क्यों नहिं चेतनहारे'।

तू ही जु आय बस्यो जननी उर, तू ही रम्यो नित बालकतारे ।
जोबनता जु भई पुनि तोहिको, ताहीके जोर अनेक तैं मारे ।।
वृद्ध भयो तु ही अंग रहै सब, बोलत बैन कहै तुतरारे ।
देखि शरीर के लक्षण भैया तु 'चेतत क्यों नहिं चेतनहारे'।।५३।।
औरसों जाइ लग्यो हित मानिके, वाहिके, संग सुज्ञान बिडारे ।
काल अनादि बस्यो जिनके ढिग, जान्यो न लक्षण ये अरि सारे ।
भूलिगयो निजरूप अनूपम, मोह माह मदके मतवारे ।
तेरो हु दाव बन्यो अबके तुम, चेतत क्यों नहिं चेतनहारे ।।५४।।

कवित्त.

पंचनसों भिन्न रहै कंचन ज्यों काई तजै, रंच न मलीन होय जाकी गति न्यारी है । कंजनके कुल ज्यों स्वभाव कीच छुऐ नाहि, बसै जलमांहि पै न ऊर्धता विसारी है ।। अंजनके अंश जाके वंशमें न कहूं दीखै, शुद्धता स्वभाव सिद्धरूप सुख-कारी है । ज्ञानको समूह ज्ञान ध्यानमें विराजि रह्यो, ज्ञानदृष्टि देखो 'भैया' ऐसो ब्रह्मचारी है ।।५५।।

चिदानंद 'भैया' विराजत है घटमाहिं, ताके रूप लखिवेको उपाय कछु करिये । अष्ट कर्म जालकी प्रकृति एक चार आठ, तामें कछू तेरी नाहि आपनी न धरिये ।। पूरबके बंध तेरे तेई आइ उदे होंहि, निजगुणशकतिसों तिन्है त्याग तरिये । सिद्धसम चेतन स्वभावमें विराजत है, वाको ध्यान धरु और काहुसों न डरिये ।।५६।।

एक शीख मेरी मानि आप ही तू पहिचानि, ज्ञान दृग चर्ण आन वास बाके थरको । अनंत बलधारी है जु हलको न

भारी है, महाब्रह्मचारी है जु साथी नाहिं जरको ॥ आप महा ते-
जवंत गुणको न ओर अंत, जाकी महिमा अनंत दूजो नाहि
बरको । चेतनाके रस भरे चेतन प्रदेश धरे, चेतनाके चिह्न करे
सिद्ध पटतरको ॥५७॥

कर्मको करैया यह भरमको भरैया यह, धर्मको धरैया यहै
शिवपुर राव है । सुख समझैया यह दुख भुगतैया यहै, भूलको
भुलैया यहै चेतना स्वभाव है ॥ चिरको फिरैया यहै, भिन्नको
रहैया यहै, सबको लखैया यहै याको भलो चाव है । राग द्वेषके
हरैया महामोखको करैया, यहै शुद्ध भैया एक आतमस्वभाव
है ॥५८॥

कवित्त.

मान यार मेरा कहा दिलकी चशम खोल, साहिब नजदीक है
तिसको पहचानिये । नाहक फिरहु नाहिं गाफिल जहान बीच
शुकन गोश जिनका भलीभांति जानिये ॥ पावक ज्यों बसता है
अरनी[1] पखानमाहिं, तीसरोस चिदानंद इसहीमें मानिये । पंजसे
गनीम तेरी उमर साथ लगे हैं खिलाफ तिसें जानि तू आप सच्चा
आनिये ॥५९॥

अबैं भरमके त्योरसों देख क्या भूलता, देखि तु आपमें जिन
आपने बताया । अंतरकी दृष्टि खोलि चिदानंद पाइयेगा । बाहि-
रकी दृष्टिसों पौग्दलीक छाया है ॥ गनमिनके भाव सब जुदे करि
देखि तू, आगें जिन ढूंढा तिन इसी भांति पाया है । वे ऐब सा-
हिब बिराजता है दिलबीच, सच्चा जिसका दिल है तिसीके
दिल आया है ॥६०॥

१ एक प्रकारकी लकडी.

माहक विरामे ताई अपना कर मानता है, जानता तू है कि ना ही अंत मुझे मरना है। कतेक जीवनेपर ऐसे फैल करता है, सुपनेसे सुखमें तेरा पूरा परना है ॥ पंजसे गनीम तेरी उमरके साथ लगे, तिनोंको फरक किये काम तेरा सरना है। पाक बे-ऐब साहिब दिलबीच बसता है, तिसको पहिचान बे तुझे जो तरना है ॥६१॥

वे दिन क्यों फरामोश करता है चिदानंद, दोजकके बीच तू पूकार पडा करता था। उछालके अकाश तुझै लेते थे त्रिसूलसो आतिससा आब तू तौ पीवतैं ही जरता था ॥ तत्ता लोहा करिकें देह तेरी तोरते थे, फिरस्तोके आगे तू साइत भी न ठरता था। जिंदगानी सागरोंकी उमर तेरी हुई थी, जिसके बीच बे तू ऐसे दुःख भरता था ॥६२॥

चेतहुरे चिदानंद इहां बने दोऊ फंद, कामिनी कनक छंद ऐन मैनकासी है। जिहिंको तू देख भूल्यो, विषयसुख मान फूल्यो मोहकी दशा में झूल्यो, ऐनमैन कासी है ॥ पाये तैं अनेक बेर देखै कहा बेरि बेरि, कालकरतब हेरि ऐन मैनिकासी है। इनकों तू छाँडदेहु 'भैया' कह्यो मानि लेहु, सिद्ध सदा तेरो गेह ऐनमै-नकासी हैं ॥६३॥

कोटि कोटि कष्ट सहे, कष्टमें शरीर दहे, धूमपान कियो पैं न पायो भेद तनको। वृक्षनके मूल रहे जटानमें झूलि रहे, मानमध्य भूलि रहे किये कष्ट तनको ॥ तीरथ अनेक न्हये, तिरत न कहूं भये, कीरतिके काज दियो दानहू रतनको। ज्ञानविना बेर बेर क्रिया करी फेर फेर कियो, कोऊ कारज न आतमजतनको ॥६४॥

धरम न जानतु है मूढ मिथ्या मानतु है, शास्त्र शुद्ध छोरि औ-

र पठयो चाहे पारसी । मिथ्यामती देव जहां शीस नावे जाय तहां, एतेपर कहै हमें ये ही पूरो पारसी ।। निशदिन विषै मानै सुकृतको नहिं जानै, एसी करतूत करै पोंच्यो चाहे पारसी ।। नर्कमांहि परैगो सु तीस तीन भरैगो, करेगो पुकार ए कोन विपति पारसी।६५।

सवैया.

देव अदेवमें फेर न मान, कहै सब एक गँबार कहूं को ।
साधु कुसाधु समान गनै चित, रंच न जानत भेद कहूंको ।।
धर्म कुधर्मको एक विचारत, ज्ञान विना नर बासी चहूंको ।
ताहि विलोकि कहा करिये मन ! भूलो फिरै शठ काल तिहूंको।६६।

दोहा.

नैननितें देखै सकल, नै ना देखै नाहि ।
ताहि देखु को देख तो, नैन झरोखे मांहि ।।६७।।

कवित्त.

देखै ताहि देख जो पै देखिवेकी चाह धरै, देखे विन आप तोहि पाप बडो लागै है । मोहनीद शैनमें अनादि काल सोय रह्यो, देखि तू विचारि ताहि सोवै है कि जागै है ।। रागद्वेषसंगसों मिथ्यातरंग राचि रह्यो, अष्ट कर्म जालकी प्रतीति मानि पागै है । विषैकी कलोल हंस देखि देखि भूलि गयो, रूप रस गंध ताहि कैसें अनुरागै है ।।६८।।

देव एक देहरे में सुंदर सुरूप बन्यो,ज्ञानको विलास जाको सिद्धसम देखिये । सिद्धकीपी रीति लिये काहूसो न प्रीति किये पूरबके बंध तेई आइ उदै पैखिये ।। बर्ण गन्ध रस फास जामें कछु नाहि भैया, सदाको अबन्ध याहि ऐसो करि लेखिये । अजरा अमर ऐसो चिदानंद जीव नाव, अहो मन मूढ ताहि मर्ण क्यों विशेखिये ।।६९।।

काके दोऊ राग द्वेष जाके ये करम आठ, काके ये करम आठ जाके रागद्वेख हैं। ताको नाव क्यों न लेहू ? भले जानो तुम लेहू, लिखिहु बतावो लिखिवेको कहा लेख है ? ।। ताको कछू लच्छन है ? देखि तूं विचक्षन है, कछू उन्मान कहो ? मान कह्यों भेख है । ए न कहो सुधि तै परैगो आगैं आगैं, जोपैं कहू इनसों मिलापको विशेख हैं ।।७०।।

कुंडलिया.

भैया, भरम न भूलिये, पुग्दलके परसंग ।
अपनो काज सवांरिये, आय ज्ञानके अंग ।।
आय ज्ञानके अंग, आप दर्शन गहि लीजे ।
कीजे थिरताभाव, शुद्ध अनुभौ रस पीजे ।
दीजे चउविधि दान, अहो शिव-खेत बसैया ।
तुम त्रिभुवनके राय, भरम जिन[1] भूलहु भैया ।।७१।।
हंसा हँस हँस आप तुझ, पूर्व संवारे फंद ।
तिहि कुदाबमें बंधि रहे, कैसें होहु सुछंद ।।
कैसें होहु सुछंद, चंद जिम राहु गरासै ।
तिमर होय बल जोर, किरणकी पभुता नासै ।।
स्वपरभेद भासै न देह जड लखि तजि संसा ।
तुम गुण पूरन परम सहज अवलोकहू हंसा ।।७२।।
भैया पुत्र कलत्र पुनि, मात तात परिवार ।
ए सब स्वारथके सगे, मनमांहि विचार ।।
तू मनमांहि विचार, धार निजरूप निरंजन ।
परपरिणति सो भिन्न, सहज चेतनता रंजन ।।

(१)-जिन, निषेधार्थक शब्द है। आज्ञार्थक निषेध—मत।

कर्म भर्म मिलि रच्यो, देह जड मूर्ति धरैया ।
तासों कहत कुटुंब मोद मद माते भैया ॥७३॥
सूवा सयानप सब गई, सेयो सेमर वृच्छ ।
आयै धोखे आमके, यापैं पूरण इच्छ ॥
रहे विषय लपटाय, मुग्धमति भरम भुलान्यो ॥
फलमहिं निकसे तूल स्वाद पुन कछू हूवा ।
यहै जगतकी रीति देखि, सेमरसम सूवा ॥७४॥

मात्रिक कवित्त.

आठनकी करतूत विचारहु, कौन कौन यह करते ख्याल ।
कबहूं शिरपर छत्र धरावहिं, कबहू रूप करैं बेहाल ॥
देवलोक कबहूं सुख भुगतहिं, कबहू नेकू नाजको काल ।
ये करतूति करैं कर्मादिक, चेतन रूप तु आप संभाल ॥७५॥
चेतन रूप विचारि विचक्षन, ए सब हैं परके परपंच ।
आठो कर्म लगे निशिवासर, तिन्हें निवारि लेहु किन खंच ॥
जिय समुझावत हों फिर तोकों, इनसे मग्न होउ जिन[1] रंच ॥
ये अज्ञान तुम ज्ञान विराजत, तातैं करहु न इनको संच ॥७६॥
चेतन जीव विचारहु तौ तुम, निहचै ठोर रहनकी कौन ।
देवलोक सुरइंद्र कहावत, तेहू करहिं अंत पुनि गौन[2] ॥
तीन लोकपति, नाथ जिनेश्वर, चक्रीधर पुनि नर हैं जौन ।
यह संसार सदा सुपनेसम, निहचै वास इहां नहीं हौन ॥७७॥
चितके अंतर चेत विचक्षन, यह नरभव तेरो जो जाय ।
पूरब पुण्य किये कहुं अति ही, तातें यह उत्तम कुल पाय ॥
अब कछु सुकृत ऐसो कर तू, जाते मरण जरा नहि थाय ।
बार अनंती मरकें उपजे, अब चेतहु चित चेतन राय ॥७८॥

(१) जिन—मताई । (२) गौन—गमन.

कवित्त.

अरे नर मूरख तू भामिनीसों कहा भूल्यो, विषकीसी बेलकाहू दगाको बताई है । सेवत ही याहि नैकु पावत अनेक दुःख, सुखहूकी बात कहूं सुपनै न आई है ।। रसके कियेसों रसरोगको रसंस होइ, प्रीतिके कियेसों प्रीति नरककी पाई है । यह शुभ्र सागर में डूबि वेकी ठौर भैया, यामें कछु धोखा खाय रामकी दुहाई है ।।७९।।

मात्रिक कवित्त.

चंद्रमुखी मन धारत है जिय, अंतसमें तोकों दुखदाई ।
चारहु गतिमें यही फिरावत, तासों तुम प्रीति लगाई ।।
बार अनंती नरकहिं डारिके, छेदन भेदन दुःख सहाई ।
सुबुधि कहे सुनि चेतन प्रानी, सम्यक शुद्ध गहौ अधिकाई ।।८०।।

सवैया.

रे मन मूढ विचर करो, तियके संग बात सबै विगरैगी ।
ए मन ज्ञान सुध्यान धरो, जिनके संग बात सबै सुधरैगी ।।
धू गुण आपु विलक्ष गहो पुनि, आपुहितै परतीति टरैगी ।
सिद्ध भये ते यही करनी करि, ऐसें किये शिव नारि वरैगी।।८१।।

सोरठा.

ए हो चेतनराय, परसों प्रीति कहा करी ।
जे नरकहिं ले जाहिं, तिनहीसो राचे सदा ।।८२।।

मात्रिक कवित्त.

चेतन नींद बडी तुम लीनी, ऐसी नींद लेय नहिं कोय ।
काल अनादि भये तोहि सेवत, विन जागे समकित क्यों होय ।।

निहचै शुद्ध गयो अपनो गुण, परके भाव भिन्न करि खोय।
हंस अंश उज्वल ह्वै जब ही, तब ही जीव सिद्धसम सोय ॥८३॥
काल अनादि भये तोहि सोवत, अब तो जागहु चेतन जीव।
अमृत रस जिनवरकी बानी, एकचित्त निहचै करि पीव॥
पूरब कर्म लगे तेरे संग, तिनकी मूर उखारहु नींव।
ये जड प्रगट गुप्त तुम चेतन, जैसे भिन्न दूध अरु घीव ॥८४॥

समान सवैया.

काल अनादितै फिरत फिरत जिय, अब यह नरभव उत्तम पायो॥
समुझि समुझि पंडित नर प्रानी, तेरे कर चिंतामणि आयो॥
घटकी आँखैं खोलि जोंहरी, रतन जीव जिनदेव बतायो।
तिलमें तेल बास फूलनिमें, यो घटमें घटनायक गायो ॥८५॥

सवैया.

हंसको वंश लख्यो जबतें, तबतैं जु मिटयो भ्रम घोर अंधेरो।
जीव अजीव सबै लखि लीने, सु तत्व यहै जिनआगमकेरो॥
तार्क्ष्यके आवत ही अहि भागे, सु छूटि गयो भवबंधन घेरो।
सम्यक शुद्ध गहो अपनो गुन, ज्ञानके भानु कियो है सवेरो ॥८६॥

कवित्त.

उदै करै जोपै भानु पच्छिमकी दिशा आय, उडिके अकाश मध्य जाय कहूं धरती। अचल सुमेरु सोउ चल्यो जाय अवनीपै, सीतता स्वभाव गहै आगि महा जरती॥ फूलै जोपै कौल कहूं पर्वतकी शिलानपै, पत्थरकी नाव चलै पानीमाहिं तरती। चलिके ब्रह्मंड जोपै तालमधि जाहि कहूं, तऊ विधनाकी लेखि लिखी नाहिं टरती ॥८७॥

सवैया.

काहेको शोच करै चित चेतन, तेरी जु बात सु आगें बनी है ।
देखी है ज्ञानीतें ज्ञान अनंत में, हानि ओ वृद्धिकी रीति घनी है॥
ताहि उलंघि सकै कहि कौउ जु, नाहक भ्रामिक बुद्धि ठनी है ।
याहि निवारिकें आपु निहारिकें, होहु सुखी जिम सिद्ध धनी है।८८।
कोउ जु शोच करो जिन रंचक, देह धरी तिंहु काल हरैगो ।
जो उपज्यो जगमें दिन चारके, देखत ही पुनि सोइ मरैगो ॥
मोह भुलावत मानत सांचसो, जानत याहीसों काज सरैगो ।
पंडित सोई विचारत अंतर, ज्ञान सँभारिकें आपु तरैगो ॥८९॥
काहेको देहसों नेह करै तुअ, अंतको राखी रहैगी न तेरी ।
मेरी है मेरी कहा करै लच्छिसो, काहुकी ह्वैके कहूं रही नेरी ॥
मान कहा रह्यो मोह कुटुंबसों, स्वारथके रस लागे सगेरी ।
त तैं तू चेति विचक्षन चेतन, झूंटी है रीति सबै जगकेरी ॥९०॥

कवित्त.

केवल प्रकाश होय अंधकार नाश होय, ज्ञानको विलास होय ओरलों निवाहवी । सिद्धमें सुवास होय, लोकालोक भास होय, आपु रिद्ध पास होय औरकी न चाहवी ॥ इन्द्र आय दास होय अरिनको त्रास होय, दर्वको उजास होय इष्टनिधि गाहिवी । सत्व सुखराश होय सत्यको निवास होय, सम्यक भयेतैं होय ऐसी सत्य साहिवी ॥ ९१ ॥

मात्रिक कवित्त.

जाके घट समकित उपजत है, सो तौ करत हंसकी रीत ।
क्षीर गहत छांडंत जलको सँग, वाके कुलकी यहै प्रतीत ॥

कोटि उपाय करो कोउ भेदसों, क्षीर गहै मल नेकु न पीत।
तेसें सभ्यकवंत गहै गुण, घट घट मध्य एक नयनीत ॥६२॥
सिद्धसमान चिदानंद आनिके, थापत है घटके उर बीच।
वाके गुण सब वाहि लगावत, और गुणिह सब जानत कीच ॥
ज्ञान अनंत विचारत अंतर, राखत है जियके उर सींच!
ऐसे समकित शुद्ध करतु है, तिनतैं होवत मोक्ष नगीच ॥६३॥

कवित्त.

निशदिन ध्यान करो निहचै सुज्ञान करो, कर्मको निदान करो आवै नाहि फेरिकैं। मिथ्यामति नाश करो सम्यक उजास करो, धर्मको प्रकाश करो शुद्ध दृष्टि हेरिकैं॥ ब्रह्मको विलास करो, आतमानिवास करो, देव सब दास करो महामोह जेरिकै। अनुभौ अभ्यास करो थिरतामें वास करो, मोक्षसुख रास करो कहूं तोहि टेरिकै ॥६४॥

जिनके सुदृष्टि जागी परगुणके भए त्यागी, चेतनसों लव लागी भागी भ्रांति भारी है। पंचमहाव्रतधारी जिन आज्ञाके विहारी, नग्न मुद्राके अकारी धर्मतिकारी है॥ प्राशुक अहारी अठ्ठाईस मूल गुणधारी, परोसह सहै भारी परउपकारी हैं। पर्मधर्म धनधारी सत्य शब्दके उचारी, ऐसे मुनिराज ताहि वंदना हमारी है ॥६५॥

शुभ जो अशुभ कर्म दोऊ सम जानत है, चेतनकी धारामें अखंड गुण साजे हैं। जिवद्रव्य न्यारो लखे न्यारे लखै आठो कर्म पूरवीक बंधतै मलीन केई ताजे हैं॥ स्वसंवेग ज्ञानके प्रवानतें अ-वाधि वेदि ध्यानकी विशुद्धतासो चढै केई बाजे हैं। अंतरकी दृष्टि-

सों अरिष्ट सब जीत राखे, ऐसी बातैं करै ऐसे महा मुनिराजे हैं ॥९६॥

श्रीवीर जिनस्वामीको केवल प्रकाश भयो, इंद्र तब आय तहां क्रिया निज कीनी है। सोचत सो इन्द्र तब बानी क्यो न खिरै आज यह तो अनादि थिति भई क्यो नवीनी है ॥ पूछत सीमंधरपैं जायके विदेहक्षेत्र, इन्द्रभूति योग छिनमें बताय दीनी है। आय एक काव्य पढी जाय इंद्रभूति पास, सुनत ही चौक चल्यो आय दीक्षा लीनी है ॥ ९७ ॥

छंद पल्यङ्गम

राग द्वेष अरु मोह मिथ्यात्व निवारिये।
पर संगति सब त्याग, सत्य उर धारिये।
केवल रूप अनूप हंस निज मानिये।
ताके अनुभव शुद्ध सदा उर आनिये ॥९८॥

सवैया.

जो पद स्वाद विवेकि विचारत, रागनके रस भेद नपो है।
पंच सु वर्णके लच्छन वेदत, बूझै सुवास कुवासहि जो है ॥
आठ सपर्श लखै निज देहसो, ग्यान अनंत कहेंगे कितो है।
ताहि विलोकि विचक्षन दे मन ! द्वै पल देखत को है ॥९९॥

कवित्त.

बुद्धि भये कहा भयो जोपैं शुद्ध चीन्हीं नाहिं, बुद्धिको तौ फल यह तत्व को विचारिये। देह पाये कौन काज पूजे जो न जिनराज, देहकी बडाईये जप तप वितारिये ॥ लच्छि आये कौन सिद्धि रहि है न थिर रिद्धि, लच्छिको तौ लाहु जो सुपात्र मुख

डारिये । वचनकी चातुरी बनाय बोले कहा होहि, वचन तौ वह सत्य शबद उचारिये ॥१००॥

सवैया.

जो परलीन रहै निशिवासर, सो अपनी निधि क्यों न गमावै ।
जो जगमहि लखै न अध्यातम, सो जिय क्यों निहचै पद पावै ॥
जो अपने गुन भेद न जानत, सो भवसागरमैं फिर आवै । जो
विष खाय सो प्राण तजे, गुड खाय जो काहे न कांन विधावै।१०१।

दुर्मिल सवैया. ८ सगण.

भगवंत भजो सु तजो परमाद, समाधिके संगमे रंग रहो ।
अहो चेतन त्याग पराइ सु बुद्धि, गहो निज शुद्धि ज्यो सुक्ख लहो ॥
विषया रसके हित बूडत हो, भवसागरमें कछु शुद्धि गहो ।
तुम ज्ञायक हो षट् द्रव्यनके, तिनसो हित जानिके आपु कहो ।१०२।

कवित्त.

देखि देह-खेतक्यारी ताकी ऐसी रीति न्यारी बोये कछु आन उपजत कछु आन है । पंचामृत रस सेती पोखिये शरीर नित, उपजै रुधिर मास हाडनको ठान है ॥१०२॥ एतेपर रहै नाहिं कीजिये उपाय कोति,छिनमेंविनश जाय नाम न निशान है। एते देखि मूरख उछाह मनमाहिं धरै, ऐसी झूंठ बातनिको सांच कर मान है ॥१०३॥

कुडलिया.

सुखमें मग्न सदा रहै, दुखमें करै विलाप ।
ते अजान जाने नहीं, यहै पुन्य अरु पाप ॥
यहै पुण्य अरु पाप, आप गुन इनतें न्यारो ।
चिद्विलास चिद्रूप, सहज जाको उजियारो ॥

गुण अनंत जामैं प्रगट, कबहू होहिं न और रुख ।
तिहिं पद परसे विनु रहै, मूढ मगन संजारसुख ॥१०४॥

कवित्त.

जीव जे अभव्य राशि कहे हैं अनंत तेउ, ताहूतै अनंत गुणे सिद्धके विशेखिये । ताहूते अनंत जीव जगमें जिनेश कहे, तिनहूतैं कर्म ये अनंत गुणे लेखिये ॥ तिनहुतै पुग्दल प्रमाण है अनंत गुणे, ताहूतैं अनंत यों आकाशको जु पेखियें । ताहूतैं अनन्त ज्ञान जामें सब विद्यमान, तिहूं काल परमाण एक समै देखियें ॥१०५॥

कवित्त.

जेतो जल लोकमध्य सागर असंख्य कोटि, तेतो जल पियो पै न प्यास याको गई है । जेते नाज दोपमध्य भरे है अवार ढेर, तेते नाज खायो तोउ भूक याकी नई है ॥ तातैं ध्यान ताको कर जातै यह जाँय हर, अष्टादश दोष आदि ये ही जात लई है । वहे पंथ तूही साजि अष्टादश जाहिं भाजि होय बैठि महाराज तोहि सीख दयो है ॥ १०६॥

कविकी लघुता, छद कवित्त.

एहो बुद्धिवंत नर हँसो जिन मोहि कोऊ, बाल ख्याल कीनो तुम लीजियो सुधारिके । मैं न पढयो पिंगल न देख्यो छंद कोश कोऊ, नाममाला नामको पढो नहीं विचारिके ॥ संस्कृत प्राकृत व्याकरणहू न पढयो कहूं, तातैं मोको वोष नाहि शोधियो निहारिके । कहत भगोतोदास ब्रह्मको लह्यो विलास, तातैं ब्रह्मरचना करो है विसतारिके ॥१०७॥

दोहा.

इति श्री शतअष्टोत्तरी, कीन्हीं निजहित काज ।
जे नर पढहिं विवेकसो, ते पावहिं शिवराज ॥१०८॥

इति शतअष्टोत्तरी कवित्त बंध समाप्त ।

द्रव्यसंग्रह मूलसहित कवित्तबन्ध

मंगलाचरण. आर्या छंद.

जीवमजीवं दव्वं, जिणवरवसहेण जेण णिद्दिठ्ठं ।
देविंदविंदवंदं, वंदे तं सव्वदा सिरसा ॥ १ ॥

छप्पय छंद.

सकल कर्म क्षय करन, तरन तारन शिवनायक ।
ज्ञानदिवाकर प्रगट, सर्व जीवहिं सुखदायक ॥
परम पूज्य गणधरहु, ताहि पूजित—जिनराजे ।
देवनिके पति इन्द्रवृंद, वंदित छवि छाजे ॥
इह विधि अनेक गुणनिधिसहित, वृषभनाथ मिथ्यातहर ।
तसु चरणकमल बंदित भविक, भावसहित निज जोर कर ॥१॥

दोहा.

तिहुँ जिन जीव अजीवके, लखे सगुण परजाय ।
कहे प्रकट सब ग्रंथमें, भेदभाव समझाय ॥ १ ॥

जीवो उवओगमओ, अमुत्ति कत्ता सदेहपरिमाणो ।
भुत्ता संसारत्थो, सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई ॥ २ ॥

कवित्त.

जीव है सुज्ञानमयी चेतना स्वभाव धरै, जानिबो औ देखिबो अनादिनिधि पास है । अमूर्तिक सदा रहै और सो न रूप गहै, निश्चै नै प्रवान जाके आतम विलास हैं ॥ व्योहारनय कर्त्ता है देहके प्रमान मान, भोक्ता सुख दुःखनिको जगमें निवास है शुद्ध नै विलोके सिद्ध करमकलंक विना, ऊर्द्ध को स्वभाव जाको लोक अग्रवास है ॥ २ ॥

तिक्काले चदुपाणा, इंदिय बलमाउ आणपाणा य ।
ववहारा सो जीवो, णिच्चयणयदो दु चेदणा जस्स ॥ ३ ॥

तिहूं काल चार प्राण धरै जगवासी जीव, इन्द्री बल आयु औ उस्वास स्वास जानिये । एई चार प्राण धरै साता मानि जीवो करै, तातैं जीव नांव कह्यो नैव्योहार मानिये ॥ निश्चै नय चेतना विराज रही शुद्ध जाके, चेतना विरुद सदा याहीतै प्रमानिये । अतीत अनागत सुवर्तमान 'भैया' निज, ज्ञानप्रान शास्वतो स्वभाव यों बखानिये ॥३॥

उवओगो दुवियप्पो, दंसण णाणं च दंसणं चदुधा ।
चक्खु अचक्खू ओही, दंसणमध केवलं णेयं ॥४॥

जीवके चेतना परिणाम शुद्ध राजतु है, ताके भेद दोय जिनग्रन्थनिमें गाइये । एक है सु चेतना कहावे शुद्ध दरशन, दूजी ज्ञानचेतना लखेतैं ब्रह्म पाइये ॥ देखिवेके भेद चारि लीजिये हृदै विचारि, चक्षु ओ अचक्षु औधि केवल सुध्याइये । ये ही चार भेद कहे दर्शनके, देखनके, जाके परकाश लोकालोक हू लखाइये ॥४॥

णाणं अठ्ठवियप्पं, मदिसुदिओही अणाणणाणाणि ।
मणपज्जय केवलमवि, पच्चक्खपरोक्खभेयं च ॥५॥
मइ सुइ परोक्ख णाणं, ओहो मण होइ वियल पच्चक्खं ।
केवलणाणं च तहा, अणोवम होइ सयलपच्चक्खम् ॥५॥

ज्ञानके जु भेद आठ ताके नाम भिन्न सुनो, कुमति कुश्रुति अवधि लों विशेखिये । सुमति सुश्रुति सु औधि मनपर्जय और, के-

वल प्रकाशवान बसुभेद लेखिये ।। मति श्रुति ज्ञान दोऊ हैं परोक्षवान औधि, मनपर्जय प्रत्यक्ष एकदेश पेखिये । केवल प्रत्यक्ष भास लोकालोकको विलास, यहै ज्ञान शास्वतो अनंतकाल देखिये ।।५।।

अठ्ठचदुणाणदंसण, सामण्णं जीवलक्खणं भणियं ।
ववहारा सुद्धणया, सुद्धं पुण दंसणं णाणं ।।६।।

मात्रिक कवित्त,

अष्ट प्रकार ज्ञान चउ दरसन, नयव्यवहार जीवके लच्छन ।
निहचें शुद्ध ज्ञान ओ परसन, सिद्धसमान सुछंद विचक्षन ।।
केवल ज्ञान दरस पुनि केवल, राजै शुद्ध तजै प्रतिपच्छन ।
यह निहचै व्योहार कथनकी, कथा अनंत कही शिव गच्छन ।।६।।

वण्ण रस पंच गंधा, दो फासा अठ्ठ णिच्चया जीवे ।
णो संति अमुत्ति तदो, ववहारा मुत्ति बंधादो ।।७।।

कवित्त.

वर्ण पंच स्वेत पीत हरित अरुण श्याम, तिनहूके भेद नाना भांतिके विदीत है । रस तीखो खारो मधुरो कडुओ कषायलो, इनहूके मिले भेद गणती अतीत है ।। तातो सीरो चीकनी रूखो नरम कठोर, हरुवो भारी सुगंध दुर्गंधमयी रीत है । मूरति सुपुग्दलकी जीव अमूरतीक नैव्योहार मूरतीक बंधतै कहीत है ।।७।।

बध्यो है अनादिहीको कर्मके प्रबंधसेती, तातैं मूरतीक कह्यो परके मिलाषसों । बंधहीमें सदा रहै समै प्रतिसमै गहै; पुग्गलसों एकमेक ह्वै रह्यो है आपसों ।। जैसे रूपो सोनो मिले एक नांव

पाय रह्यो, तैसें जीव मूरतीक पुग्गलप्रतापसों । यहै बात सिद्ध भई जीव मूरतीकमई, बंधकी अपेक्षा लई नैव्योहार छापसों ॥७॥

पुग्गलकम्मादीणं, कत्ता ववहारदो दु णिच्चयदो ।
चेवणकम्मा णादा, सुद्धणया सुद्ध भाषाणं ॥८॥

पुदगल करमको करैया है चिदानंद, व्योहार प्रवान इहां फेर कछु नाहीं है । ज्ञानावर्णी आदि अष्ट कर्मको करता है रागादिक भाव धरै आप उहि पाही है ॥ शुद्ध नै विचारिये तो राग है कलंक याकै, यह तो अटंक सदा चेतनासुधा ही है । अनंत ज्ञान परिणाम तिनको करैया जीव, सास्वतो सदीव चिरकाल आपमाही है ॥८॥

ववहारा सुहदुक्खं, पुग्गलकम्मप्फलं पभुंजेदि ।
आदा णिच्चयणयदो, चेदणभावं खु आदस्स ॥९॥

व्योहार नै देखिये तो पुग्गलके कर्मफल, नाना भांति सुख दुःख ताको भुगतैया है । उपजाये आपुतें ही शुभ ओ अशुभ कर्म, ताके फल साता ओ असाताको सहैया है ॥ निश्चैनय देखिये तो यह जीव ज्ञानमई, अपने चेतन परिणामको करैया है । तातें भोक्ता पुनि सुचेतन परिणामनिको, शुद्ध नै विलोकिये तो सबको लखैया है ॥९॥

अणुगुरुदेहपमाणो, उवसंहारप्पसप्पदो चेदा ।
असमुहदो ववहारा णिच्चयणयदो असंखदेसो वा ॥१०॥

देहके प्रमान राजै चेतन विराजमान, लघु और दीरघ शरीरके उदैसों है । ताहीके समान परदेश याके पूरि रहे, सूक्ष्म औ वादर तन धरै तहां तैसो है ॥ व्यवहार नय ऐसो कह्यो समुद्घात

विना, देहको प्रमान नाहि लोकाकाश जैसो है । शुद्ध निश्चय न-यसों असंख्यात परदेशी, आतम स्वभाव धरै विद्यमान ऐसो है ॥१०॥

पुढविजलतेउवाऊ, वणप्फदी विविह थावरेइंदी ।
विगतिगचदुपंचक्खा, तसजीवा होंति संखादी ॥११॥

पृथ्वीकाय जलकाय अग्निकाय वायुकाय, वनस्पतिकाय पांचो थावर कहीजिये । बेइंद्री तेइंद्री चौइंद्री पंचेंद्रिय है चारो, जामें सदा चलिवेकी शकति लहीजिये ॥ तन जीभ नाक आंख कान ये ही पंच इंद्री, जाके जेते होय ताहि तैसो सर्दहीजिये । संख द्वै पिपीलि तीन भौर चार नर पंच, इन्हें आदि नाना भेद समुझि गहीजिये ॥११॥

समणा अमणा णेया, पंचिंदिय णिम्मणा परे सव्वे ।
वादरसुहुमेइंदी सव्वे पज्जत्त इदरा य ॥१२॥

पंच इंदी जीव जिते ताके भेद दोय कहे, एकनिके मन एक मन बिना पाइये । और जगवासी जंतु तिनके न मन कहूं, एकें द्री बेइंद्री तेंद्री चौइंद्री बताइये ॥ एकेंद्रीके भेद दोय सूक्षम बादर होय, पर्यापत अपर्यापत सवै जीव गाइये । ताके बहु विस्तार कहै हैं जु ग्रंथनिमें, थोरेमें समुझि ज्ञान हिरदै अना-इये ॥१३॥

मग्गण गुण ठाणेहि य, चउदसहि हवंति तह असुद्धणया ।
विण्णेया संसारी, सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया ॥१३॥

चउदह मारगणा चउदह गुणस्थान, होंहि ये अशुद्ध नय

कहे जिनराजने । ये ही भाव जौलों तौलों संसारी कहावै जीव, इनको उलंघिकरि मिलै शिव-साजनें ।। शुद्ध नै विलोकिये तौ शुद्ध है सकल जीव, द्रव्यकी उपेक्षासो[1] अनंत छवि छाजनें । सिद्धके समान ये विराजमान सबै हंस, चेतना सुभाव धरै करें निज काजनें ।।१३।।

णिक्कम्मा अठठ्गुणा किंचूणा चरमदेहदो सिद्धा ।
लोयग्गठिदा णिच्चा, उप्पादवयेहिं संजुत्ता ।।१४।।

अष्टकर्महीन अष्टगुणयुत चरम सुदेह तातें कछु ऊनो सुखको निवास है । लोकको जु अग्र तहाँ स्थित है अनंत सिद्ध, उतपादव्यय संयुक्त सदा जाको बास है ।। अनंतकाल पर्यन्त थिति है अडोल जाकी, लोकालोकप्रतिभासी ज्ञानको प्रकाश है । निश्चै सुखराज करै बहुरि न जन्म धरै, ऐसो सिद्ध राशनिको आतम विलास है ।।१४।।

पयडिट्ठदिअनुभागप्पदेसबंधेहि सव्वदो मुक्को ।।
उडंढ् गच्छदि सेसा, विदिसावज्जं गदिं जंति ।।१५।।

प्रकृति ओ थितिबंध अनुभागबंध परदेशबंध एई चार बंध भेद कहिये । इन्ही चहुं बंधतें अबंध ह्वैके चिदानंद, अग्निशिखासम ऊर्द्धको सुभावी लहिये ।। और सब जगजीव तजै निज देह जब, परभौको गौन करे तबै सर्ल गहिये । ऐसें ही अनादिथिति नई कछू भई नाहि कही ग्रंथमांहि जिन तेसी सरदहिये ।।१५।।

(इति जीवके नवाधिकार)

पुग्दल द्रव्य.

अज्जीवो पुण णेओ, पुग्गल धम्मो अधम्म आयासं ।
कालो पुग्गल मुत्तो, रूबादिगुणो अमुत्ति सेसा दु ॥१५॥

अजीव दरब पंच ताके नांव भिन्न सुनो, पुग्दल ओ धर्मद्रव्यको सुभाव जानिये । अधर्म द्रव्य आकाश द्रव्य काल दर्ब एई, पांचो द्रव्य जगमें अचेतन बखानिये ॥ तामें पुग्गल है मूरती रूप रस गंध पर्शमई गुण परजाय लिये जानिये । और पंच जीवजुत कहे हैं अमूरतीक, निज निज भाव धरें भेदी ह्वै पिछानियें ॥१५॥

पुग्दल की पर्यायें

सद्दो बंधो सुहमो, थूलो संठाण भेद तम छाया ॥
उज्जोदादबसरिया, पुग्गलदव्वस्स पज्जाया ॥१६॥

शबद बंध सूक्षम थूल ओ अकार रूप, ह्वैबो मिलिबो ओ बिछूरिबो धूप छाय है । अंधारो उजारो जो उद्योत चंद्रकांतिसम, आतप सु भानु जिम नानाभेद छाय है ॥ पुग्दल अनन्त ताकी परजाय हू अनंत, लेखो जो लगाइये तोऽनंतानंत थाय है । एक ही समैमें आय सब प्रतिभासि रही, देखी ज्ञानवंत ऐसी पुन्दल पर्जाय है ॥१६॥

धर्म द्रव्य

गइपरिणयाण धम्मो, पुग्गलजीवाण गमणसहयारी ॥
तोयं जह मच्छाण, अच्छंता णेव सो णेई ॥१७॥

जब जीव पुन्दल चले उठि लोकमध्य, तबै धर्मास्तिकाय सहाय आय होत है । जैसे मच्छ पानीमाहिं आपुहीतै गोन करे, नीरकी सहायसेंती अलसता खोत है ॥ पुनि यो नही जो पानी मीनको चलावे पंथ, आपुहीते चलै तौ सहाय कोऊ नोत है ।

तैसें जीव पुन्दलको और न चलाय सके, सहजै ही चलै तौ स-हायका उदोत है ॥१७॥

अधर्म द्रव्य

ठाणजुदाण अधम्मो, पुग्गलजीवाण ठाणसहयारी ॥
छाया जह पहियाण, गच्छंता णेव सो धराई ॥१८॥

जीव अरु पुग्गलकों थितिसहकारी होंय, ऐसो है अधर्मद्रव्य लोकताई हद है। जैसे कोऊ पथिक सुपंथमध्य गौन करे छाया-के समीप आय बैठे नेकु तद है ॥ पै यों नहीं जु पंथीको राखतु बैठाय छाया, आपुने सहज बैठे बाको आश्रैपद है। तैसें जीव पुग्दलको अधर्मास्तिकाय सदा, होत है सहाय 'भैया' थितिसमै जद है ॥१८॥

आकाश

अवगासदाणजोग्गं, जीवादीणं वियाण आयासं ॥
जेण्णं लोगागासं, अल्लोगागासमिदि दुविहं ॥१९॥

जीव आदि पंच पदार्थनिको सदा ही यह, देत अवकाश तातैं आकाश नाम पायो है ताके भेद दोय कहे। एक अलोकाकाश, दूजो लोकाकाश जिन ग्रंथनिमें गायो है ॥ जैसे कहूं घर होय तामें सब बसें लोय तातैं पच द्रव्यहूको सदन बतायो है। याही-में सबै रहै पै निजनिज सत्ता गहै, यातैं परें और सो अलोक ही कहायो है ॥१९॥

लोकाकाश और अलोकाकाश

धम्माधम्मा कालो, पुग्गलजोवा य संति जावदियें ॥
आयासे सो लोगो, तत्तो परदो अलोगुत्तो ॥२०॥

जितने आकाशमाहिं रहै ये दरब पंच, तितने अकाशको जु लो काकाश कहिये। धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य कालद्रव्य पुन्दल-द्रव्य

जीव द्रव्य एई पांचो जहां लहिये ।। इनतै अधिक कुछ और न देख्यो ज्ञान विराज रह्यो, नाम सो अलोकाकाश ऐसोसरदहियें। वर्तनि अनंत ज्ञान-चक्षु करि, गुणपरजाय सो सुभाव शुद्ध गहिये ।।२०।।

काल

दव्वपरिवट्टरूवो, जो सो कालो हवेइ ववहारो ।।
परिणामादीलक्खो, वट्टणलक्खो य परमठ्ठो ।।२१।।

जोई सर्व द्रव्यको प्रवर्त्तावन समरथ, सोई कालद्रव्य बहुभेद-भाव राजई। निज निज परजाय विषै परिणवै यह, कालकी सहाय पाय करै निज काजई ।। ताही कालद्रव्यके विराजि रहे भेद दोय, एक व्यवहार परिणाम आदि छाजई। दूजो परमार्थ काल निश्चय वर्त्तना सु चाल, कायतें रहित लोकाकाशलों सु गाजई ।।२१।।

लोयायासपदेसे, इक्केक्के जेठिठ्या हु इक्केक्का ।
रयणाणं रासीमिव, ते कालाणू असंखदव्वाणि ।।२२।।

लोकाकाशके जु एक एक परदेश विषै, एक एक काल अणु सुविराजि रहे हैं। तातैं काल अणु के असंख्य द्रव्य कहिय-तु, रतनकी राशि जैसें एक पुंज लहे हैं ।। काहुसों न मिलै कोई रत्नजोति दृष्टि जोई, तैसें काल अणु होय भिन्नभाव गहे हैं। आदि अंत मिलै नाहिं वर्त्तना सुभावमांहि, समै पल मुहूर्त्त प-रजायभेद कहे हैं ।।२२।।

एवं छब्भेयमिदं, जीवाजीवप्पभेददो दव्वं ।
उत्तं कालविजुत्तं, णायव्वा पंच अत्थिकाया दु ।।२३।।

दोहा.

जीव अजीवहि द्रव्यके, भेद सुषट्विध जान ।
तामें पंच सु कायधर, कालद्रव्य विन मान ।।२३।।

संति जदो तेणेदे, अत्थीति भणंति जिणवरा जह्मा ।
काया इव बहुदेसा, तह्मा, काया य अत्थिकाया य ॥२४॥

कवित्त.

ऐसे कह्यो जिनवर देखि निज ज्ञानमाहिं, इतने पदार्थनिको कायधर मानिये । जीवद्रव्य पुन्दलद्रव्य धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य ओ अकाश द्रव्य एई नाम जानिये ॥ कायके समान सदा बहुते प्रदेश धरै, तातैं काय संज्ञा इन्हैं प्रत्यक्ष प्रवानिये । निज निज सत्तामें विराजि रहे सबै द्रव्य, ऐसें भेदभाव ज्ञानदृष्टिसों पिछानिये ॥२५॥

होंति असंखा जीवे, धम्माधम्मे अणंत आयासे ।
मुत्ते तिविह पदेसा[1], कालस्सेगो ण तेण सो काओ ॥२५॥

जीवद्रव्य धर्मद्रव्य अधरमद्रव्य इन, तीनोंको असंख्य परदेशी कहियतु है । अनंत प्रदेशी नभ पुग्दलके भेद तीन, संख्याऽसंख्याऽनंत परदेशको बहतु है ॥ कालके प्रदेश एक अन्य पांचके अनेक, तातैं पंच अस्तिकाय ऐसो नाम हेतु है । काल विनकाय जिनराजजूने यातैं कह्यो, एक परदेशी कैसें कायको धरतु है ॥२५॥

एयपदेसोवि अणू, याणा खंधप्पदेमदो होदि ।
बहुदेसो उबयारा, तेण य काओ भणंति सव्वण्हू ॥२६॥

पुग्गल प्रमाणू जो पैं एक परदेश धरै, तौ पैं बहु प्रमाणु मिलै बहु प्रदेश हैं । नानाकार खंधसों जु कितने प्रदेश होंहि, अनंत असंख्य संख्य भेदको धरेश हैं ॥ तातैं सर्वज्ञजूने पुग्गल प्रमाणु

---

(१) 'पयेसा' ऐसा भी पाठ है ।

प्रति, कह्यो कायधर सदा जाके सब भेश है। देखिये जु नैननिसों फुग्गलके, पुंज सबै, यहै लोकमांहि एज सासतो नरेश है ॥२६॥

जावदियं आयासं, अविभागी पुग्गलाणुवट्ठद्धं ।
तं खु पदेसं जाणे सव्वाणठ्ठाणदाणरिहं ॥२७॥

जितनो आकाश पुग्गलाणु एक रोकि रह्यो, तितने आकाश को प्रदेश एक कहिये। शुद्ध अविभागी जाके एकके न होय दोय, ऐसे परमाणुके अनेक भेद लहिये॥ अनंत परमाणूको योग्य ठौर देवेको जु, ऐसो ही अकाशको प्रदेश एक गहिये। जामें और द्रव्य सब प्रगट विराजि रहे, कोऊ काहू मिलै नाहिं ऐसो सरदहिये ॥२७॥

आसवबंधणसंवरणिज्जरमोक्खा सपुण्णपावा जे ॥
जीवाजीवाविसेसा तेवि समासेण पभणामो ॥२८॥

चौपाई-१५ मात्रा.

आस्रव संवर बंधको खंध, निर्जर मोक्ष पुण्यको बंध ॥
पाप रु जीव अजीव सु भेव, इते पदार्थ कहों संखेव[1]॥२८॥

आसवदि जेण कम्मं, परिणामेणप्पणो स विण्णेओ ॥
भावासवो जिणुत्तो, कम्मासवणं परो होदि ॥२९॥

दुर्मिल छंद. सवैया–३२ मात्रा

जिहँ आतमके परिणामनिसों, निज कर्महि आस्रव मानि लये।
तिहँ भावनिको यह नाम लियो, भावास्रव चेतनके जु भये ॥
दरवास्रव पुग्दलको अयबो, करमादि अनेकन भांति ठये।
इम भावनिको करता भयो चेतन, दर्वित आस्रव ताहितें ये॥२९॥

(१) संक्षेप।

मिच्छत्ताविरदिपमादजोगकोहादओ सविण्णेया ॥
पणपणपणदहतियचउ, कमसो भेदा दु पुव्वस्स ॥३०॥

मात्रिक कवित्त.

पांच मिथ्यात पांच है अव्रत, अरु पंद्रह परमादहिं जानि ।
मन वच काय योग ये तीनो, चतु कषाय सोरहविधि मानि ॥
इन्है आदि परिणामजाति बहु, भावास्रव सब कहे बखानि ।
तातैं भावकर्मको करता, चिन्मूरत 'भैया' पहिचानि ॥३०॥

णाणावरणादीणं, जोग्गं जं पुग्गलं समासवदि ॥
दव्वासवो स णेओ, अणेय[1]भेओ जिणक्खादो ॥३१॥

कवित्त.

ज्ञानावर्णी आदि अष्ट करमनिको आयबो, पुग्गलप्रमाण मिलि नानाभांति थिते हैं। जीवके प्रदेशनिको आयके आछादतु है, कोऊ न प्रकाश लहै, असंख्यात जिते हैं ॥ ऐसो द्रव्य आस्रव अनेक भाँति राजतु है, ताहीके जुवसि जग बसें जीव किते हैं। कहे सर्वज्ञजूने भेद ये प्रत्यक्ष जाके, वेदें ज्ञानवंत जाके मिथ्यामत बीते हैं ॥३१॥

बज्झदि कम्मं जेण दु, चेदणभावेण भावबंधो सो ॥
कम्मादपदेसाणं अण्णोण्णपवेसणं इदरो ॥३२॥

चेतन परिणामसो कर्म जिते बांधियत, ताको नाम भावबंध ऐसो भेद कहिये। कर्मके प्रदेशनिको आतमप्रदेशनिसों परस्पर मिलिबो एकत्व जहां लहिय ॥ ताको नाम द्रव्यबंध कह्यो जिन ग्रंथिनिमें, ऐसो उभै भेद बंध पद्धतिको गहिये। अनादिहीको जीव यह बंधसेती बँध्यो है, इनहीके मिटत अनंत सुख पहिये[2] ॥३२॥

(१) 'अणेयभेदो' ऐसा भी पाठ है। (२) 'लहिये' पाठ भी है।

पयडिठिठ्दिअणुभागप्पदेसभेदा दु चदुविधो वंधो ॥
जोगा पयडिपदेसा, ठिदिअणुभागा कसायदो होंति ॥३३॥

द्रव्यबंधभेद चारि प्रकृति ओ स्थितिबंध, अनुभागबंध परदेश बंध मानिये। प्रकृति प्रदेशबंध दोऊ मनबचकाय के संयोगसेती होंहि ऐसे उर आनिये ॥ थिति बंध अनुभाग होंय ये कषायसेती, समुच्चै समस्या एती समुझि प्रमानिये। ऐसे बंधविधि कही ग्रंथनिके अनुसार सर्वग विचारि सरवज्ञ भये जानिये ॥३३॥

चेदणपरिणामो जो, कम्मस्सासवणिरोहणे हेऊ ॥
सो भावसंवरो खलु, दव्वासवरोहणो अण्णो ॥३४॥

कर्मनिके आस्रव निरोधिवेके भाव भये, तेई परिणाम भावसंवर कहीजिये। द्रव्यास्रव रोकिवेको कारण सु जे जे होंय, ते ते सर्व भेद द्रव्यसंवर लहीजिये ॥ याहि विधि भेद दोय कहे जिनदेव सोय, द्रव्यभाव उभै होय 'भैया' यों गहीजियै। संवरके आवत ही आस्रव न आवै कहूं, ऐसे भेद पाय परभाव त्यागि दीजिये ॥३४॥

वदसमिदी गुत्तीओ, धम्माणुपेहापरीसहजओ य ॥
चारित्तं बहु भेया, णायव्वा भावसंवरविसेसा ॥३५॥

अहिंसादि पंच महाव्रत पंच समिति सु, मनवचकाय तीन गुपति : मानिये। धरम प्रकार दश बारह सुभावना जु, बाईस परीसहको जीतिबो सुजानिये ॥ बहुभेद चारितके कहत न आवै पार, अति हीं अपार गुण लच्छन पिछानिये एते सब भेद भाव संवरके जानिये जु, समुच्चैहि नाम कहे 'भैया' उर आनिये॥३५॥

जहकालेण तवेण य, भुत्तरसं कम्मपुग्गलं जेण ॥
भावेण सडदि णेया, तस्सडणं चेदि णिज्जरा दुविहा ॥३६॥

मात्रिक कवित्त.

जे परिणाम होंहि आतमके, पुग्गल करम खिरनके हेत ।
अपनो काल पाय परमाणु, तप निमित्ततैं तजत सुखेत ।।
तिहँ खिरिवेके भाव होंहि बहु, ते सब निर्ज्जरभाव सुचेत ।
पुग्गल खिरैं सुद्रव्य निर्जरा, उभयभेद जिनवर कहिदेत ।।३६।।
सव्वस्स कम्मणो जो, खयहेदू अप्पणो क्खु परिणामो ।।
णेयो स भावमोक्खो, दव्वविमोक्खो य कम्म[1]पुहभावो ।।३७।।

छप्पय छंद

सकल कर्म छय करन, भाव अंतरगत राजै ।
तिन भावनिसों कहत भाव यह मोक्ष सु छाजै ।।
दर्वमोक्ष तहाँ लहत, कर्म जहाँ सर्व विनासै ।
आतमके परदेश, भिन्न पुग्दलतैं भासैं ।।
इहविधि सुभेद द्वै मोक्षके, कहे सु जिनपथ धारिकै ।
यह द्रव्य भावविधि सरदहत, सम्यकवंत विचारिकै ।।३७।।

सुहअसुहभावजुत्ता, पुण्णं पावं हवंति खलु जीवा ।।
सादं सुहाउ णामं, गोदं पुण्णं पराणि पावं च ।।३८।।

कवित्त.

शुभ भाव तहां जहां शुभ परिणाम होंहि, जीवनिकी रक्षा अरु व्रतनिकों करिबो । तातें होय पुण्य ताको फल सातावेदनीय, शुभ आयु शुभ गोत बहु सुख बरिबो ।। अशुभ प्रणामनितें जीव हिंसा आदि बहु, पापको समूह होय सृकृतको हरिबो । वेदनी असाता होय छिनकी न साता होय, आयु नाम गोत सब अशुभको भरिबो ।।३८।।

इति श्रीसप्ततत्वनवपदार्थप्रतिपादकनामा द्वितीयोऽधिकारः ।। २ ।।

(१) 'पुध' ऐसा भी पाठ है ।

सम्मद्दंसणं णाणं, चरणं मोक्खस्स कारणं जाणे ।
ववहारा णिच्चयदो, तत्तियमइओ णिओ अप्पा ॥३९॥

छप्पय.

सम्यकदरशप्रमाण, ज्ञान पुनि सम्यक सोहै ।
अरु सम्यक चारित्र, त्रिविध कारण शिव जो है ॥
नय व्यवहार बखानि, कह्यो जिन आगम जैसे ।
निहचै नय अब सुनहु, कहहुं कछु लच्छन तैसे ॥
दर्शन सुज्ञान चारित्रमय, यह है परम स्वरूप मम ।
कारण सु मोक्षको आपु तैं, चिद्विलास चिद्रूप क्रम ॥३९॥

रयणत्तयं ण वट्टइ, अप्पाणं मुयतु अण्णदवियह्मि ॥
तह्मा तत्तिय मइओ, होदि हु मोक्खस्स कारणं आदा ॥४०॥

कवित्त.

जीव व्यतिरेक ये रतनत्रय आदि गुण, अन्य जड़ द्रव्यनिमें नैकहू न पाइये । तातैं दृगज्ञानचर्ण आतमको रूप वर्ण, त्रिगुणको मूलधर्ण चिदानंद ध्याइये । निश्चै नय मोक्षको जु कारण है आप सदा, आपनो सुभाव मोक्ष आपुमें लखाइये । जैसें जैनबैनमें बखाने भेदभाव ऐन, नैनसो निहारि 'भैया' भेद यों बताइये ॥४०॥

जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं रूवमप्पणो तं तु ॥
दुरभिणिवेसविमुक्कं णाणं सम्मं खु होदि सदि जह्मि ॥ ४१ ॥

जीवादि पदार्थनिकी जोंन सरधानरूप, रुचि परतीति होय निजपर भास है । ताको नाम सम्यक कहा है शुद्ध दरशन, जाके सरधाने विपरीत बुद्धि नाशहै ॥ आतम स्वरूपको सुध्यान

ऐसे कहियतु, जाके होत होत बहु गुणको निवास है । सम्यक दरस भये ज्ञानहू सम्यक होय, इन्है आदि और सब सम्यक विलास है ॥४१॥

संसयविमोहविब्भमविवज्जियं अप्पपरसरूवस्स ॥
गहणं सम्मं णाणं सायारमणेयभेयं तु[1] ॥४२॥

छप्पय.

निजपरवस्तु स्वरूप ताहि वेदै अरु धारै ।
गुन लच्छन पहिचानि, यथावत अंगीकारै ॥
संशय विभ्रम मोह, ताहि वर्जित निज कहिये ।
ऐसो सम्यक ज्ञान, भेद जाके बहु लहिये ॥
तसपद महिमा अगम अति, बुधिबल को वरनन करै ।
यह मतिज्ञानादिक बहुत, भेद जासु जिन उच्चरै ॥ ४२ ॥

जं सामण्णं गहणं, भावाणं णेव कट्टुमायारं ॥
अविसेसिदूण अठ्ठे, दंसणमिदि भण्णये समये ॥४३॥

मात्रिक कवित्त.

जासु स्वरूप सबै प्रतिभासत, दर्शन ताहि कहै सब कोय ।
भरुवभेद विचार विना जहँ, एकहि बेर विलोकन होय ॥
जानि जु द्रव्य यथावत वेदत, भेद अभेद करै नहिं जोय ॥
गुण देखै विकलप विनु 'भैया', दरसन भेद कहावे सोय ॥४३॥

दंसणपुव्वं णाणं, छदमत्थाणं ण दुण्णि उवयोगा ॥
जुगवं जह्मा केवलिणाहे जुगवं तु ते दोवि ॥ ४४ ॥

---

(१) 'च' ऐसा ही पाठ है ।

कुंडलिया.

सब संसारी जीवको, पहिले दरशन होय ।
ताके पीछें ज्ञान ह्वै, उपजैं संग न दोय ॥
उपजैं संग न दोय, कोइ गुण किसि न सहाई ।
अपनी अपनी ठौर, सबै गुण लहै बडाई ॥
पैश्रीकेवल ज्ञानको, होय परमपद जब्ब ।
तब कहुं समै न अंतरो, होंहि इकठ्टे सब्ब ॥४४॥

असुहादो विणवित्ती सुहे पवित्ती य जाण चारित्तं ॥
वदसमिदिगुत्तिरूवं ववहारणया दु जिणभणियं ॥४५॥

कवित्त.

पापपरिणाम त्याग हिंसातैं निकसि भाग, धरमके पंथ लाग दयादान कररे । श्रावकके व्रत पाल ग्रंथनके भेद भाल, लगै दोष ताहि टाल अघनिको हररे ॥ पंच महाव्रतधरि पंच हू समिती करि, तीनहू गुपति वारि तेरह भेद चररे । कहै सर्वज्ञ देव चारित्र व्योहारभेव, लहि ऐसा शीघ्रमेव बेग क्यों न सररे ॥४५॥

बहिरब्भंतरकिरियारोहो भवकारणप्पणासट्ठं ।
णाणिस्स जं जिणुत्तं तं परमं सम्मचारित्तं ॥४६॥

अभ्यंतर बाह्य दोऊ क्रियाको निरोध तहां, परम सम्यक्त गुण चारित उदोत है । वैन अरु कोय दोंऊ बाहिरके योग कहे, मन अभ्यंतर योग तीनों रोध होत है ॥ ताहीतैं निघट जल जात है संसाररूप, रागादिक मलिन को याही क्रम खोत है । कषा आदि कर्मके समूहको विनाश करै, ताको नाव सम्यक चारि दधिपोत है ॥४६॥

दुविहंपि मोक्ख हेउं, झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा ।
तह्मा पयत्तचित्ता, जूयं ज्झाणं समब्भसह ।। ४७ ।।

मात्रिक कवित्त.

द्वै परकार मोखको कारण, नितप्रति तस कीजे अभ्यास ।
रत्नत्रयतैं ध्यानप्राप्त पुन, सुख अनंत प्रगटै निजरास ।।
ध्यान होय तो लहै रतनत्रय, छिनमें करै कर्मको नास ।
तातैं चिंता त्याग भविकजन, ध्यान करो धर मन उल्लास ।।४७।।

मा मुज्झह मा रज्जह, मा दुस्सह इठ्ठणिठ्ठ अत्थेसु ।
थिरभिच्छह जइ चित्तं, विचित्त झाणप्पसिद्धीए ।। ४८ ।।

छप्पय.

मोह कर्म जिन[1] करहु, करहु जिन रागऽरु द्वेषहि ।
इष्ट संयोगहि देख, करहु जिन राग विशेषहिं ।।
मिलहिं अनिष्टसँयोग, द्वेष जिन करहु ताहि पर ।
जो थिरता चित चहहु, लहहु यह सीख मंत्र वर ।।
ध्रुवध्यान करहु बहु विधिसहित निर्विकल्पविधि धारिकें ।
जिमि लहहु परमपद पलकमें, त्रिविध करम अघ टारिकें ।।४८।।

पणतीस सोल छप्पण, चदु दुगमेगं च जवह झाएह ।।
परमेठ्ठिवाचयाणं, अण्णं च गुरूवएसेण ।। ४९ ।।

चौपाई १५ मात्रा.

पंच परम पद कीजे ध्यान । तस अक्षरका सुनहु विधान[2] ।
तीस पंच अक्षर गणलीजे । नमस्कार नितप्रति तिहँ कीजे ।
'णमो अरहंताणं' सात । 'णमो सिद्धाणं' पंच विख्यात ।
'णमो आयरियाणं' पँच दोय । 'णमो उवज्झायाणं, रिषि[3] होय

(१) मत । (२) 'विनान' ऐसाभी पाठ है । (३) सात !

'णमोलोए सव्वसाहूणं' । नवमिलि पैंतिस अक्षर गुणं ।
शोलह अक्षरको विस्तार । सुनहु भविक परमागमसार ॥
'अरहंत सिद्ध आचारज' नाम । 'उपाध्याय' नित 'साधु' प्रमाण ।
'अरहंत सिद्ध' छै अक्षर जान 'अ सि आ उ सा' पंच प्रधान ।
चतु अक्षर 'अरहंत' चितारि । द्वै अक्षर श्री 'सिद्ध' निहारि ॥
इक अक्षर 'ओं' सब ही धरै । इनको सुमरन भविजन करै ।
ये सबही परमेष्टि लखेय । अन्य सकलगुरुमुख सुनलेय ॥

दोहा.

इह विधि पंच परमपदहि, भविजन नितप्रति ध्याय ॥
इनके गुणहि चितारतैं प्रगट इन्ही सम थाय ॥४९॥
णट्ठ चउघायकम्मो, दंसण सुहणाणवीरियमइओ ।
सुहदेहत्थो अप्पा, सुद्धो अरिहो विचिंतिज्जो ॥ ५० ॥

कवित्त.

ऐसें निज आतम अर्हंतको विचारियतु, चारकर्म नष्ट गये ताहीतें अफंद है । ज्ञानदर्शवरणीय मोहिनी सु अंतराय, येही चारि कर्म गये चेतन सुछंद है ॥ दृष्टिज्ञान सुख वीर्य अनंत चतुष्टै युक्त, आतमा विराजमान मानों पूर्णचंद है । परमोदारीक देह बसै राग तजै जेह, दोषनितें रह्यो सुद्ध ज्ञानको दिनंद है ॥ ५० ॥

णट्ठट्ठकम्मदेहो, लोयालोयस्स जाणवो दट्ठा ॥
पुरिसायारो अप्पा, सिद्धो ज्झाखेह लोयसिहरत्थो ॥ ५१ ॥

ऐसे यह आतमाको सिद्ध कह ध्याइयतु, आठोंकर्म देहादिक दोष जाके नसे हैं । लोक ओ अलोकको जु ज्ञानवन्त ष्टष्टिमांहिं जाकी स्वच्छताईमें सुभाव सब लसे हैं ॥ अनंतगुण प्रगट अनंतकालपरजंत, थिति है अडोल जाकी पुरुषाकार बसे हैं । ऐसा है स्व

रूप सिद्धखेतमें विराजमान, तैसो ही निहारि निज आपुरस रसे हैं ॥ ५१ ॥

दंसण णाणपहाणे, वीरिय चारित्त वरतवायारे ।
अप्पं परं च जुंजइ, सो आयरिओ मुणी ज्झेओ ॥ ५२ ॥

पंच जु आचरजके जानत विचार भले, ताही आचरजजूको नाम गुणधारी है । आपहू प्रवर्तै इह मारग दयाल रूप, औरैं प्रवर्तावनको परउपकारी है ॥ दरसनाचार ज्ञानाचारवीर्याचार चर्णाचार तपाचारमें विशेष बुद्धि भारी है । इन्हैं आदि और गुण केतेई विराज रहे, ऐसे आचारज प्रति बंदना हमारी है ॥५२॥

जो रयणत्तयजुत्तो णिच्चं धम्मोवएसणे णिरदो ॥
सो उवझाओ अप्पा जदिवरवसहो णमो तस्स ॥५३॥

मात्रिक कवित्त.

सम्यक दरश ज्ञान पुनि सम्यक, अरु सम्यक चारित कहिये ।
ये रतनत्रय गुण करि राजत, द्वादश अँग भेदी लहिये ॥
सदा देत उपदेश धरमको, उपाध्याय इह गुण गहिये ।
मुनि गणमाहिं प्रधान पुरुष है, ता प्रति बंदन सरदहिये ॥५३॥

दंसण णाणसमग्गं मग्गं मोक्खस्स जो हु चारित्तं ।
साधयदि णिच्च सुद्धं, साहू स मुणी णमो तस्स ॥ ५४ ॥

दोहा.

सम्यक दर्शन संजुगत, अरु सम्यक जहँ जान ।
तिहूँ करि पूरण जो भरयो, सो चारित परमान ।
चारित मारग मोक्षको, सर्वकाल सुध होय ।
तिहँ साधत जो साधु मुनि, तिनप्रति वंदत लोय ॥५४॥

जंकिंचि विचिंतंतो, णिरीहवित्ती हवे जदा साहू ॥
लद्धूणय एयत्तं, तदा हु तं तस्स णिच्चयं ज्झाणं ॥५५॥

छप्पय.

जब कहुं साधु मुनीन्द्र, एक निज रूप विचारें ।
तब तहँ साधु मुनीन्द्र, अघनिके पुंज विदारें ॥
जब कहुं साधु मुनीन्द्र, शुद्ध थिरतामहिं आवै ।
तब तहँ साधु मुनीन्द्र त्रिविधिके कर्म वहावै ॥
इम ध्यान करत मुनिराज जब, रागादिक त्रिक टारिके ।
तिन प्रति निश्चै कहत जिन, वंदहु सुरति सँभारिके ॥५५॥

मा चिट्ठह मा जंपह, मा चिंतह किंचि जेण होइ थिरो ॥
अप्पा अप्पम्मि रओ, इणमेव परं हवे ज्झाणं ॥ ५६ ॥

कवित्त.

मनवचकाय तिहूँ जोगनिसों राचि कहुं, करो मति चेष्टा तुम इनकी कदाचिकें । बोलो जिन वैन कहूं इनसों मगन ह्वै के, चिंतो जिन आन कछु कहूं तोहि सांचिकें ॥ पर वस्तु छांडि निज रूप माहिं लीन होय, थिरताको ध्यान करि आतमसों राचिकें । देख्यो जिन जिन वान यहै उतकृष्ट ध्यान, जामे थिर होय पर्म कर्म नाच नाचिकें ॥

तवसुदवदवं चेदा, ज्झाणरहधुरंधरो जह्मा ॥
तह्मा तत्तियणिरदा, तल्लद्धीए सदा होह ॥५७॥

मात्रिक कवित्ता.

जब यह आतम करै तपस्या, दाहै सकल कर्मवन कुंज ॥
श्रुतसिद्धांत भेद बहु वेदत, जप पंच पदके गुणपुंज ॥

व्रतपच[1]खान करै बहु भेदै, इन संयुक्त महा सुख भुंज ।
तब तिहँ ध्यान धुरंधर कहिये, परमानंद प्राप्तिमें मुंज ।।५७।।

दव्वसंगहमिणं मुणिणाहा, दोससंचयचुदा सुदपुण्णा ।।
सोधयंतु तणुसुत्तधरेण, णेमिचंदमुणिणा भणियं जं ।।५८।।

कवित्त.

सकलगुण निधान पंडितप्रधान बहु, दूषणरहित गुणभूषण-सहित हैं । तिनप्रति विनवत नेमिचंद मुनिनाथ, सोधियो जु याको तुम अर्थ जे अहित हैं ।। ग्रंथ द्रव्य संग्रह सु कीनो मैं बहुतथोरो, मेरी कछु बुद्धि अल्पशास्त्र जो महित है । तातें जु यह ग्रंथ रचना-करी है कछु, गुण गहि लीज्यो एती, विनती कहित है ।।५९।।

इति श्रीद्रव्यसंग्रहग्रंथे मोक्षमार्गकथन तृतीयोऽधिकार. ।

दोहा

नेमचंद मुनिनाथने, इहविध रचना कीन ।।
गाथा थोरी अर्थ बहु, निपट सुगम करदीन ।।१।।

छप्पय.

ज्ञानवंत गुण लहै गहै आतमरस अम्रत ।
परसंगत सब त्याग, शांतरस वरें सु निज कृत ।।
वेदै निजपर भेद, खेद सब तजें कर्मलन ।
छेदै भवथिति वास, दास सब करहिं अरिनगन ।।
इहविधि अनेक गुण प्रगट करि, लहै सुशिवपुर पलकमें ।
चिद्विलास जयवंत लखि, लेहु भविक निज झलकमें ।।२।।

दोहा.

द्रव्यसंग्रह गुण उदधिसम किहँविधि लहिये पार ।
यथाशक्ति कछु बरणिये, निजमतिके अनुसार ।।३।।

(१) त्याग ।

चौपाई १५ मात्रा.

गाथा मूल, नेमिचँद करी । "महा अर्थनिधि पूरण भरी ॥
बहुश्रुत धारी, जे गुणवंत । ते सब अर्थ लखहिं विरतंत ॥४॥
हमसे मूरख समझें नाहीं । गाथा पढै न अर्थ लखाहिं ॥
काहू अर्थ लखे बुधि ऐन । वांचत उपज्यो अति चितचैन ॥५॥
जो यह ग्रंथ कवितमें होय । तौ जगमाहिं पढै सब कोय ॥
इहिविधि ग्रंथ रच्यो सुविकास, मानसिंह व भगोतीदास ॥६॥
संवत सत्रहसे इकतीस, माघसुदी दशमी शुभदीस ॥
मंगल करण परमसुखधाम, द्रवसंग्रहप्रति करहु प्रणाम ॥७॥

इति श्रीद्रव्यसग्रहमूलमहित कवित्तबंध समाप्तः ।

—: ० :—

चेतन कर्मचरित्र

दोहा.

श्रीजिन चरण प्रमाण कर, भाव भक्ति उर आन ॥
चेतन अरु कछु कर्म को. कहहुं चरित्र बखान ॥१॥
सोवत महत मिथ्यात में, चहुं गति शय्या पाय ॥
वीत्यो काल अनादि तहँ, जग्यो न चेतन राय ॥२॥
जबही भवथिति घट गई, काल लब्धि भइ आय ॥
बीती मिथ्या नीद तहँ, सुरुचि रही ठहराय ॥३॥
किये कर्ण प्रथमहि तहां, जग्यो परम दयाल ॥
लह्यो शुद्ध सम्यक दरस, तोरि महा अघ जाल ॥४॥
देखहिं दृष्टि पसारिकें, निज पर सबको आदि ॥
यह मेरे कौन हैं, जड़से लगे अनादि ॥५॥
तब सुबुद्धि बोली चतुर, सुन हो ! कंत सुजान ॥
यह तेरे संग अरि लगे, महासुभट बलवान ॥६॥

कहो सुबुद्धि किम जीतिये, ये दुश्मन सब घेर ॥
ऐसी कला बताव जिमि, कबहुं न आवें फेर ॥७॥
कह सुद्धि इक बुसीख सुन, जो तू मानें कंत ॥
कै तो ध्याय स्वरूप निज, कै भज श्रीभगवंत ॥८॥
सुनिके सीख सुबुद्धिकी, चेतन पकरी मौन ॥
उठी कुबुद्धि रिसायके, इह कुलक्षयनी कौन ? ॥९॥
मैं बेटी हूं मोह की, ब्याही चेतनराय ॥
कहौ नारि यह कौन है, राखी कहां लुकाय ॥१०॥
तब चेतन हँस यों कहै, अब तोसों नहिं नेह ॥
मन लाग्यो या नारिसों, अति सुबुद्धि गुणगेह ॥११॥
तबहि कुबुद्धि रिसायके, गई पिताके पास ॥
आज पीय हमें परिहरी, तातें भई उदास ॥ १२ ॥

चौपाई (मात्रा १५)

तबहि मोह नृप बोलै बैन । सुन पुत्री शिक्षा इक ऐन ॥
तू मन में मत ह्वै दलगीर । बांध मँगावत हों तुमतीर ॥१३॥
तब भेजो इक काम कुमार । जो सब दूतनमें सरदार ॥
कहो बचन मेरो तुम जाय । क्योंरे अंध अधरमी राय ॥१४॥
ब्याही तिय छांडहि क्यों । क्रूर कहां गयो तेरो बल शूर ॥
कै तो पांय परहु तुम आय । कै लरिबे को रहहु सजाय ॥१५॥
ऐसे बचन दूत अवधार । आयहु चेतन पास विचार ॥
नृपके बैन ऐन सब कहे । सुनके चेतन रिस गहे रहे ॥१६॥
अब याको हम परमें नाहि । निजबल राज करें जगमाहिं ॥
जाय कहो अपने नृप पास । छिनमें करूं तुह्मारो नास ॥१७॥

तुम मन में करहु गुमान । हम बहु हैं यह एक सुजान ॥
कर आवहु असवारी बेग । मैं भी बांधी तुम पर तेग ॥१८॥

ऐसे बचन सुनत विकराल । दूत लखै यह कोप्यो काल ॥
उन से तो जब ह्वै है रारि । तबलों मोह न डारै मारि ॥१९॥

तब मन में यह कियो विचार । अबके जो राखै करतार ॥
तौ फिर नाम न इनको लेउं । चेतनको पुर सब तज देउं ॥२०॥

तब बोले चेतन राजान । जाहु दूत तुम अपने थान ॥
फिर जिन आवहु इहिपुर माहिं । देखेसों बचिहो पुनि नाहिं॥२१॥

सोरठा.

दूत लह्यो प्रस्ताव, मन में तो ऐसी हुती ॥
भलो बन्यो यह दाव, आयो राजा मोह पै ॥२२॥
कही सबै समुझाय, बातें चेतन राय की ॥
नत्रहि न तुमको आय लरिबे की हामी भरै ॥२३॥
सुनके राजा मोह, कीन्हीं कटकी[1] जीव पें ॥
अहो सुभट सज होय, घेरो जाय गँवार को ॥२४॥
सज सज सबही शूर, अपनी अपनी फौज ले ॥
आये मोह हजूर, अबै महल्ला[2] लीजिये ॥२५॥

चौपाई.

राग द्वेष दोउ बडे बजीर । महा सुभट दल थंभन वीर ॥
फौज माहिं दोऊँ सरदार । इनके पीछें सब परवार ॥२६॥

ज्ञानावरण बोलै यों बैन । मो पै पंच जाति की सैन ॥
जिन जग जीव किये सब जेर[3] । राखे भवसागर में घेर ॥२७॥

(१) आक्रमण । (२) हाजिरी । (३) कैद ।

ज्ञान उपरि मेरै सब लोग । ताहींतें न जगैं उपयोग ॥
जानें नहीं 'एक अरु दोय' । सो महिमा मेरी सब होय ॥२८॥
तब दर्शनावरण यों कहै । जगके जीव अंध ह्वै रहै ॥
सो सब है मेरो परशाद । नौ रस बीर करें उनमाद ॥२९॥
तवै वेदनी बोलै धोर । मो पैं दोय जातिके बीर ॥
महा सुभट जोधा बलसूर । तीर्थंकर के रहें हुजूर ॥३०॥
और जीव बपुरे किहि मात । मेरी महिमा जग विख्यात ॥
मोको चाहें चहुं गति माहिं । मैं छिन सुख द्यों छिन दुख पांहि॥३१॥
आयु कर्म बोलै बलवंत । सिद्ध बिना सब मेरे जंत[1] ॥
मैं राखो तोलौं थिर रहै । नातरु पंथ मौत की गहै ॥३२॥
मो पैं चार जातिक सूर । तिनसों युद्ध करै को कूर ॥
चहु गति में मेरे सब दास । मैं त्यागों तब शिवपुरवास ॥३३॥
नामकर्म बोलै गहि भार । मो विन कौन करै संसार ॥
मैं करता पुदगल को रूप । तामें आय बसे चिद्रूप ॥३४॥
वीर तिरानवे मेरे संग । रूप रसीले अरु बहुरंग ॥
इनसों सरभर[2] को जिय करै । तोहू न छांडै मर अवतरै ॥३५॥
गोत्रकर्म लै द्वय अवसार । ऊंचनीच जिनको परवार ॥
सूर वंशको यहै स्वभाव । छिनमें रंक करै छिन राव ॥३६॥
अंतराय अपनों दलसाज । पंच सुभट देखौ महाराज ॥
सबके आगे ये असवार । रणमें युद्ध करें निरधार ॥३७॥
कर हथियार गहन नहिं देहिं । चेतनकी सुधि सब हर लेहिं ॥
ऐसे सुभट एक सौ बीस । तिनके गुणजानें जगदीश ॥३८॥

---

(१) जीव । (२) बराबरी ।

इनके सुभट सात सरदार । परदल गंजन जबर जुझार ।।
तबै मोह नृप अति आनंद । देखे सब सुभटनके वृन्द ।।३९।।

पल्वङ्गम छंद

राग द्वेष द्वय मित्र, लिये तब बोलिकै ।
तुम ल्यावहु मम फौज, भवनत्रय खोलिकै ।।
वीस आठ असवार, बडे सब सूरमा ।
अरिपै यों चल जाहिं, नदी ज्यों पूरमा ।।४०।।

राग द्वेष तहँ चले, जहां सब सूर हैं ।
लाये तुरत बुलाय, प्रभु ये हजूर हैं ।।
तब बोले मुख बैन, जीवपर हम चढे ।
सुनके श्रवनन शब्द, सूरके मन बढे ।।४१।।

फौजें किन्हीं चार, बडे विसतारसो ।
निज सेवक सरदार, किये भुजभारसों ।।
पहिली फौजें सात, सुभट आगें चले ।
दूजी फौजें चार, चारतें सब भले ।।४२।।

दै धोंसा सब चढे, जहां जेतन बसै ।
आये पुरके पास, न आगें को धसै ।।
चेतनको गढ जोर, देख सब थरहरे ।
सात सुभट तब निकस, सबन आगें अरे ।।४३।।

दोहा.

उदय दूत सूधि मोहकी, कही जीवपै जाय ।।
कहां रहे तुम बैठको ? फौजें लागी आय ।।४४।।

सोरठा.

सुनके चेतन राय, चित चमक्यो कीजे कहा ॥
लीन्हों ज्ञान बुलाय, कहो मित्र कहा कीजिए ॥४५॥
तब बोलं यों ज्ञान, इनसों तो लरिये सही ॥
हरिये इनको मान, आपनी फौजें साजिये ॥४६॥

चौपाई (१५ मात्रा)

तब चेतन बोले मुख बीर । तुमसे मेरे बडे बजीर ॥
तो मो कहँ चिंता कछु नाहिं । निर्भय राज करूं जगमाहिं ॥४७॥
इनपै फौज करहू तय्यार । लेहु लंग सब सूर जुझार ॥
तबै ज्ञान सब सूर बुलाय । हुकम सुनायो चेतनराय ॥४८॥
ह्वै तैयार गहहु हथियार । कर्मनसौं अब करनी मार ॥
सुनिकै सूर खुशी अतिभये । अंतमुहूरतमें सज गये ॥४९॥
लेहू हाजिरी ज्ञान बजीर । कैसे सुभट बने सब बीर ॥
तपै ज्ञान देखै सब सैन । कौन कौन सूरा तुम ऐन ॥५०॥
प्रथम स्वभाव कहै मैं बीर । मोहि न लागे अरिके तीर ॥
और सुनहु मेरी अरदास । छिनमें करूं अरिनको नास ॥५१॥
तब सुध्यान बोलै मुख बैन । हुकम तुह्मारे जीतों सैन ॥
मो आगें सब अरि नसि जाय । सूर देख जिम तिमर पलाय ॥५२॥
पुनि बोलो चारित्र बलवंत । छिनमें करहुं अरिन को अंत ॥
अरु विवेक बोलै बलसूर । देखत मोह नसहिं अरिकूर ॥५३॥
तब संवेग कहै कर मान । अरि कुल अबहिं करूं घमसान ॥
तब उत्तम बोले समभाव । मैं जीते बांके गढराव ॥५४॥

तौ अरि बपुरे हैं किह् मात । तम सम चूर करों परभाल ॥
बोलै वच संतोष रसाल । मो आगें वे कहाँ कँगाल ॥५५॥
धीरज कहै मोसन को सूर । पलमे करहुँ अरिन चकचूर ॥
सत्य कहै मोमैं बहु जोर । मैं जीतो वैरी कठिन करोर ॥५६॥
उपशम कहत अनेक प्रकार । मैं जीते बैरी सरदार ॥
दर्शन कहत एकही बेर । जीतों सकल अरिनको घेर ॥५७॥
आये दान शील तप भाव । निश्चय विधि जानें जिनराव ॥
पार न पावहुँ नाम अपार । इहि विधि सकल सजे सरदार ॥५८॥
तबहिं ज्ञान चेतनसों कही । फौज तुह्मारी सब बन रही ॥
चेतन देखै नयन उधार । यह तौ फौज भई तय्यार ॥५९॥
अबहीं मेरे सूर अनंत । ल्यावहु ज्ञान हमारे मंत ॥
शक्ति अनन्त लसें निज नैन । देखो प्रभु तुह्मारी सैन ॥६०॥
अनंत चतुष्टय आदि अपार । सेना भई सबै तैयार ॥
जुरे सुभट सब अति बलवंत । गिनती करत न आवै अन्त॥६१॥

दोहा.

कहै ज्ञान चेतन सुनहु, रोष करहु जिन रंच ॥
एक बात मुहि ऊपजी, कहूं बिना परपंच ॥६२॥
कहै जीव कहि ज्ञान तू, कैसी उपजी बात ॥
तुम तो महा सुबुद्धि हो, कहते क्यौं सकुचात ? ॥६३॥
तबहिं ज्ञान निःशंक ह्वै, बोले प्रभु सन वैन ॥
चाकर एकहि भेजिये, गहि लावे सब सैन ॥६४॥

सोरठा.

कहा विचारो मोह, जिहँ ऊपर चढत हो ॥
भेजहु सेवक सोह, जीवीत लावै पकरके ॥६५॥

कहै चेतन सुनज्ञान, वह घेरयो पुर आयके ॥
यह कहो कौन सयान, रहिये घरमें बैठके ॥६६॥
सूरनकी नहिं रीति, अरि आये घरमें रहै ॥
कै हारें कै जीति, जैसी ह्वै तैसी बनै ॥६७॥
कहै ज्ञान सुनि सूर, तुम जो कहो सो सांच है ॥
कहा विचारो कूर, जिहँ ऊपर तुम चढत हौ ॥६८॥

पद्धरिछन्द (१६ मात्रा)

तब जीव कहै सुनिये सुज्ञान । तुम लायक नाहीं यह सयान ॥
वह मिथ्यापुरको है नरेश । जिहँ घेरे अपने सकल देश ॥ ६९ ॥
जाके सँग सूरा हैं अनेक । अज्ञान भाव सब गहें टेक ॥
मंत्रीसुर रागद्वेष हेर । छिनमें सब सेना करहि जेर ॥ ७० ॥
संशय सो गढ जाके अटूट । विभ्रम सी खाई जटाजूट ॥
विषया सी रानी जासु गह । सुत जाके सूर कषायसेह ॥७१॥
सैनापति चारों है अनंत । जिहँ घेरो अव्रतपुर महंत ॥
व्रतमानी लीन्हों देश छीन । परमत्तहिं दोही आय कीन ॥७२॥
इहि विधी सब घेरे देश जेह । चढ आई फौजे लगी तेह ॥
तातें नृप आप अनंत जोर । बल जासुन पारावर और ॥७३॥
आयुध जाके भ्रम चक्र हाथ । बहु धारा जास उपाधि साथ ॥
महा नाग फाँस विद्या अनेक । बँध सत्तर कोडा कोडि टेक ॥७४॥
वाणादिक महा कठोर भाव । जिहि लगै वचत नहिं रंक राव ॥
इहि विधी अनेक हथियार धार । कहूं नाम कहत नहीं लहै पार ७५
यह मोह महा बलवत भूप । तुम ज्ञाता जानत सब स्वरूप ॥
कैसें कर सों बची जाव । तुम स्यानें ह्वं चूको न दाव ॥७६॥

सोरठा.

तब बोले यों ज्ञान, जिय ! तुमने सांची कही ॥
पै मेरे अनुमान, तुम क्यों जानो बात यह ॥ ७७ ॥
कहै जीव सुन मित्र मैं बीतक अपनो कहूं ॥
तू धरि निश्चयचित्त, सुनहु बात विस्तारसों ॥ ७८ ॥

चौपाई.

यही मोह नृप मोहि भुलाय। निजपुत्री दीन्ही परनाय ॥
ताकी याद मोह कछु नाहिं। काल अनादि याहिविधि जाहिं ॥७९॥
मेरी सुधि बुधि सब हर लई। मोहि न सुरत रंच कहुं भई ॥
इहि कीन्हो जैसो नट कीस। विविध स्वांग नाच्यौ निशिदीस ॥८०॥
चौरासी लख नाम धराय। कबहू स्वर्ग नरक लै जाय ॥
कबहू करै मनुष तिरजंच। लखेन जाहिं याके परपंच ॥ ८१ ॥
जडपुर को मुह कियो नरेश। मैं जानों सब मेरो देश ॥
तब मैं पाप किये इहि संग। मानि मानि अपने रस रंग ॥
तब मैं बसौ मोहके गेह। तातें सब विधि जानों येह ॥ ८२ ॥
कहो कहां लों बह विस्तार। थोरेमैं छख लेहु विचार ॥८३ ॥

सोरठा.

तब बोलै इम ज्ञान, यह परमारथ मैं लह्यो ॥
अब तुम सुनहु सुजान, एक हमारी बीनती ॥ ८४ ॥
सेवक भेजो एक, जो अतिही बलवंत हो ॥
तब रहै तुह्मरी टेक, मेरे मन ऐसी बसी ॥ ८५ ॥
कहै जीव सुन ज्ञान, विना बिचारे क्यों कहौ ॥
मोह महा बलवान, ताकी पटतर कौन है ? ॥ ८६ ॥

चौपाई.

कहै ज्ञान सुन जीव नरेश । तुम सम और न कोउ राजेस ॥
सुख समाधि पुर देश विशाल । अभय नाम गढ अतिहि रसाल ८७
तामें सदा बसहु तुम नाथ । निशी दिन राज करौ हित साथ ॥
सुमति आदि पटरानी सात । सुबुधि क्षमा करुणा विख्यात ॥८८॥
निर्जर दोय धारणा एक । सात आदि अरु सखी अनेक ॥
बांधव जहां धरमसे धीर । अध्यातम से सुत वरबीर ॥८९॥
मित्र शांति रस बसै सुपास । निजगुण महल सदा सुख बास ॥
ऐसे राज करहु तुम ईश । सुख अनंत विलसहु जगदीश ॥ ९० ॥
तुम पै सूर सैनको जोर । तिनको पार नहीं कहुं ओर ॥
तुम अपनें पुर थिर ह्वै रहौ । वचन हमारो सत सरदहौ ॥९१॥
आज्ञा करहु एक जन कोय । सज सेना वह आगें होय ॥
कहै जीव तुम सुनहु सुज्ञान ।तुह्मरे वचन हमें परवान ॥ ९२ ॥
हम आज्ञा यह तुमको करी । लेहु महूरत अति शुभ घरी ॥
चढहु कर्म पै सज हथियार । सूर बडे सब तुह्मरी लार ॥ ९३ ॥
हमतुममें कछु अन्तर नाहिं । तुम हममें हम हैं तुम माहिं ॥
जैसे सूर तेज दुति धरै । तेज सकल सूरज दुति करै ॥९४॥
इहि विधि हम तुम परमसनेह । कहत न लहिये गुणको छेह ॥
ज्ञान कहै प्रभु सुन इक बैन । शिक्षा मोहि दीजियो ऐन ॥९५॥
तुम तो सब विधि हौ गुन भरे । पै अरि सों कबहूं नहिं लरे ।
तातें तुम रहियो हुशियार । युद्ध बडे अरिसों निरधार ॥९६॥

वेसरी छंद. [१६ मात्रा]

ज्ञान कहै विनती सुन स्वामी । तुम तौ सबके अन्तर जामी ॥
कहा भयो न करी मै रारी । अब देखो मेरी तरवारी ॥९७॥

वे सब दुष्ट महा अपराधी । किहं विधि सैन जाय सब साधी ।।
मेरे मन अचिरज यह ज्ञाना । पै मैं जानों तुम बलवाना ।।९८।।

दोहा.

ज्ञान कहै चेतन सुनो, तुमसे मेरे नाथ ।।
कहा विचारो क्रूर वह, गहि डारों इक हाथ ।।९९।।
तब चेतन ऐसें कहै, जीत तुह्मारी होय ।।
मारि भगावो मोहको, रागद्वेष अरि दोय ।।१००।।

करिखा छंद

ज्ञान गंभोर दलबीर संघ ले चढयो, एक तें एक सब सरस सूरा । कोटि अरु संखिन न पार काऊ गने, ज्ञानके भेद दल सबल पूरा ।।१०१।। सिपहमालार[1] सरदार भयो भेद नृप, अरि न दलचूर यह बिरद लीनो । हाथ हथियार गुणधार विस्तार बहु, पहिर दृढभाव यह सिलह कीनो ।।१०२।। चढत सब वीर मन धीर असवार ह्वै, देखि अरिदलनको मान भंजै । पेखि जयवंत जिनचंद सबही कहै, आज रुर दलनिको सही गंजै ।।१०३।। अतिहि आनंदभर वीर उमगंत सब, आज हम भिडन को दाव पायो ।।१०४।।युद्ध ऐसो विकट देखि अरि थर हरें, होय हम नाम दिन दिन सवायो ।।

मरहठा छंद

बज्जहि रण तूरे, दल बहु पूरे, चेतत गुण गावंत ।।
सूरा तन जग्गो, कोउ न भग्गो, अरिदलपै धावंत ।।
ऐसे सब सूरे, ज्ञान अंकूरे, आये सन्मुख जेह ।।
आपाबल मंडे, अरिदल खंडे, पुरुषत्वनके गेह ।।१०५।।

(१) एक प्रकार का सेनानायक

दोहा.

नाम विवेक सु दूतको, लीन्हों ज्ञान बुलाय ॥
जाय कहहु वा मोहको, भलो चहै तो जाय ॥१०६॥
जो कबहू टेढो बकै, तो तुम दीज्यो सोस[1] ॥
धिक धिक तेरे जनमको, जो कछु राखै होंस ॥१०७॥
तेरो बल जेतो चलै, तेतो कर तू जोर ॥
वे चाकर सब जीवके, छिनमें करि हैं भोर[2] ॥१०८॥
ज्ञान भलाई जानकें, मैं पठयो तोहि पास ॥
चेतनको पुर छांडदे, जो जीवन की आस ॥१०९॥

सोरठा.

चल्यो विवेक कुमार, आयो राजा मोहपै ॥
कह्यो वचन विस्तार, भलो चहै तो भाजिये ॥११०॥
सुनके वचन हुताश, कोप्यो मोह महा बली ॥
छिनमें करिहों नाश, मो आगें तुम हो कहा ॥१११॥

दोहा.

एकहि ज्ञावाणिने, तुम सब कीने जेर ॥
इतनी लाज न आवहो, मुखहिं दिखावहु फेर ॥११२॥
काल अनंतहि किन रहे, सो तुम करहु विचार ॥
सब तुममें कूबत भई, लरिवेको तय्यार ॥११३॥
चौरासी लख स्वांगमें, को नाचत हो नाच ॥
वा दिन पौरुष कित गया, मोहि कहो तुम सांच ॥११४॥
इतने दिनलों पालिकें, मैं तुम कीने पुष्ट ॥
तातें लरिवेको भये, गुण लोपी महा दुष्ट ॥११५॥

(१) शपथ (२) नष्ट भ्रष्ट.

जाहु जाहू पापी सबै, चेतन के गुण जेह ॥
मोको मुख न दिखावहू, छिनमें करिहों खेह ॥११६॥
मोहवचन ऐसे लये, सुनिके चल्यो विवेक ॥
आयो राजा ज्ञान पें, कही बात सब एक ॥११७॥
वह क्योंहू भाजै नहीं गहि, बैठयो यह टेक ॥
लरिहों फोजें जोरिके, बोलै दूत विवेक ॥११८॥
दूत वचन सुनकें हँसों, ज्ञान बलि उरमाहिं ॥
देखो थिति पूरी भई, क्योंहू माने नाहिं ॥११९॥
लेहू सुभट तुम बेग ही अव्रतपुर[1] अभिराम ॥
रह्यो क्रूर वह घेरिकें, मेंटहु वाको नाम ॥१२०॥
चढी सैन सब ज्ञान की, सूर बीर वलवन्त ॥
आगे सेनानी[2] भयो महा विवेक महंत ॥१२१॥

करिखा छद.

आय सन्मुख भये मोहकी फौजसों, भिडनके मतें सब सूर गाढे । देखि तव मोह अति कोह,[3] मनमें कियो, सुभट ललकारि रहे आप ठाडे ॥१२२॥ सूर बलवंत मदमत्त माह मोहके, निकसि सब सैन आगे जु आये ॥ मारि घमसान महा जुद्ध बहु रुद्ध करि, एक तें एक सातों सवाये ॥१२३॥
वीर सुविवेकने धनुष ले ध्यानका, मारिके सुभट सातां[4] गिराये[5] । कुमक जो ज्ञानकी सैन सब संग धसी, मोहके सुभट मूर्छा समाये देखि तब युद्ध यह मोह भाग्यो तहाँ, आय अव्रतहिं[6] सब सूर जोरे, बाँधकर मोरचे बहुरि सन्मुख भयो, लरनकी होंसते करै निहोरे ॥१२४॥

(१) चौथा गुणस्थान । (२) सेनापति । (३) क्रोध । (४) मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृतिमिथ्यात्व और अनंतानुबंधी क्रोध मान मायालोभ ये ७ प्रकृतियें । (५) उपशांत करी । (६) चौथे गुणस्थानमें ।

चौपाई १५ मात्रा.

इहविधि मोह जोरि सब सैन । देशव्रतपुर[1] बैठो ऐन ॥
करै उपाय अनेक प्रकार । किहिविधि ल्यों अव्रतपुर सार॥१२५॥
सुभट सात तिनको दुख[2]करै । तिन बिन आज निकसि को लरै ॥
जो होते वे सूर प्रधान । तो लेते अव्रतपुर थान ॥१२६॥
ऐसे वचन मोह नृप कहे । रागद्वेष तब अति उर दहे ॥
हा हा ! प्रभु ऐसें कहो । एक हमारी शिक्षा लहो ॥१२७॥
सुभट तुह्मारे है बहू बीर । तिनमें जानहु साहस धीर ॥
तिनको आज्ञा प्रभुजी देहु । इहविधि अव्रतपुर तुम लेहू॥१२८॥
तबै मोहनृप बीडा धरै । कोन सुभट आगे ह्वै लरै ॥
तब बोले अप्रत्याख्यान,[3] । मै जीतू अबके दलज्ञान ॥१२९॥
कहै मोहनृप किहिविधि वीर । मोहि बताबहु साहस धीर ॥
बोले अप्रत्याख्यान प्रकास । सुनहु प्रभू मेरी अरदास ॥१३०॥
मैं अव्रतपुर छिप जाउं । चेतन ज्ञान बसै जिह ठाउं ॥
संग लेय अपने सब लोग । नानाविधि परकासों भोग ॥१३१॥
उनके[4]उपसम वेदकभाव । क्षयउमसम बसुभेद लखाव ॥
इनकै थिरता बहु कछु नाहीं। छिन सम्यक छिन मिथ्यामाहिं।१३२।
क्षायक एक महा जे जोर । पहिले प्रगटै ना उहि ओर ॥
तोलों देखहु मैं क्या करों । व्रतके भाव[5]सर्वथा हरों ॥१३३॥
अव्रतमें उपशम हट जाय । जिहँकर पापपुण्य मन लाय ॥
जब वह मगन होय इहि संग । जोति लेहु तबही सरवंग॥१३४॥

---

(१) पंचमगुणस्थानमें । (२) चिंता । (३) अप्रत्याख्यानावरणी क्रोध मान माया लोभ । (४) चेतनके । (५) श्रावक के व्रत ।

इहिविधि जीतो परदल जाय । जो मोहि आज्ञा दीजे राय ॥
तबै मोहनृप चिंतै सही । यह तो बात भली इन कही ॥१३५॥
सिद्धि करहु अप्रत्याख्यान । लेहु सूर संग जे बलवान ॥
इहिविधि आयो पुरके[1] मांहि । ज्ञानीबिन जानै कोउ नाहिं॥१३६॥
निजविद्या परकाशै सही । नानाविध क्रोधादिक लही ॥
ताके भेद अनेक अपार । कौलों कहिये बहु विस्तार ॥१३७॥

दोहा.

इहिविधि सब ही सैन ले, आयो अप्रत्याख्यान ॥
अव्रतपुरमें बैठिके, करै व्रतनिकी हान ॥१३८॥
ताके पीछें मोहनृप, आयो सब दल जोरि ॥
महासुभट सँग सूर लै, चढयो सु मूंछ मरोरि ॥१३९॥
कुमन जसूस[2] बुलायकें, मोह कहै यह बात ॥
तुम सुधि लावहु वेगही, कहाँ सुभट वे सात ॥१४०॥
कुमन खबरि पहिले दई, वे मूर्छित[3] उन पास ॥
कछु विद्या कीजे यहां, ज्यो वे लहैं प्रकास ॥१४१॥
मोह करे विद्या विविध, रागद्वेष लै संग ॥
उनमें कछु चेतन भये, कछु रहे मूर्छित अंग ॥१४२॥
सुमन दूत सब ज्ञानपें, कही मोह की बात ॥
कहाँ रहे तुम बैठि वह, सुभट जिवावत सात ॥१४३॥
जो वे सात जिये कहूं, तो तुम सुनहो बात ॥
चेतनके सब सुभट को, करि है पलमें घात ॥१४४॥
मोह जु फौजें जोरिके, आयो करि अभिमान ॥
तुमहू अपने नाथको, खबरि पठावहु ज्ञान ॥१४५॥

(१) पांचवें गुणस्थानमे. (२) गुप्त दूत. (३) उपशमरूप.

तबै ज्ञान निज नाथपै, भेज्यो सम्यक बेग ॥
कह्यो बधाई जीतकी, अरु पुनि यह उद्वेग ॥१४६॥
बहुरि मिले वे दुष्ट सब, आये पुरके माहिं ॥
लरिवेकी मनसा करैं, भागनकी बुद्धि नाहिं ॥१४७॥
इह विधि सम्यकभाव सब, कही जीवपै जाय ॥
सुनिकें प्रबल प्रचंड अति, चढयो सुचेतनराय ॥१४८॥
महा सुभट बलवंत अति, चढयो कटक दल जोर ॥
गुण अनंत सब संग ह्वै, कर्म दहन की ओर ॥१४९॥
आय मिले सब ज्ञानसे, किन्हो एक विचार ॥
अबकें युद्ध ऐसो करहु, बहूरि न बचै गँवार ॥१५०॥
चढे सुभट सव युद्धको, सूरवीर बलवंत ॥
आये अंतर भूमिमांहि, चेतन दल सुअनंत ॥१५१॥

सोरठा.

रोपि महारण थंभ, चेतन धर्म सुध्यानको ।
देखत लगहि अचंभ, मनहिं मोहकी फौजको ॥१५२॥

दोहा.

दोऊ दल सन्मुख भये, मच्यो महा संग्राम ॥
इस चेतन योधा बली, उतै मोह नृप नाम ॥१५३॥

करिखा छद.

मोहकी फौजसों नाल गोले चलें, आय चैतन्यके दलहि लागें ॥
आठ मल दोष[1] सम्यक्त्वके जे कहे, तेहि अव्रतमें मोह दागें॥१५४॥
जीवकी फौजसों प्रबल गोले चलें, मोहके दलनिकी आय मारें ॥
अंतर[2] विरागके भाव बहु भावता,ताहि प्रतिभास ऐसो विचारे१५५

(१) शंकादि । (२) आंतरिक वैराग्य ।

बहुरि पुनि जोर करि अतिहि घन घोर करि मोहनृपचंद्र बातें चलावै दोष षट आय तन अतिहि उपजाय धन जीवकी फौज सन्मुख बगावे हंसकी फौजते बान घमसानके, गाजते बाजते चले गाढे ॥
मोहकी फौजको मारि ललकारिकरि, हेयोपादेयके भाव काढे।१५६।
अष्ट मदगजनि हलकै हंकारि दे, मोहके सुभट सब धसत सूरे ॥
एकतें एक जोधा महा भिडत हैं, अतिहि बलवंत मदमंत पूरे१५७
जीवकी फौजमें सत्य परतीतके, गजनिके पुंज बहु धसत माते ॥
मारिके मोहकी फौज को पलकमें, करत घमसान मदमत्त आते१५८
मारगाढी मचै,सुभट कोउ ना बचे,घाव विन खाये,दुहुं दलनमाहीं
एकतें एक योधा दुहुं दलनमें, कहते कछु ऊपमा बनत नाहीं १५९
सात जे सुभट मूर्छित पडते भये, मोहने मंत्रकरि सब जिवाये ॥
आय इहि जुद्धमाहि तिनहूको रुद्धकरि, जीवको जीति पीछें हटाये
मिश्र[1] सासदनहि[2] परसमिथ्यातमहि,[3] उमगिकै बहुरि अव्रतहि[4] आये।
मारि घमसान अवसान खोये त्वरित,सातमें एक ढूढंयो न पायो ॥

सोरठा.

इहविधि चेतन राय, युद्ध करत है मोहसों ॥
और सुनहु अधिकाय, अबहिं परस्पर भिडत हैं ॥१६०॥

मरहठा छंद.

रणसिंगे बज्जहिं कोउ न भज्जहिं, करहिं, महा दोउ जुद्ध ॥
इत जीव हंकारहिं, निजपरवारहिं, करहु अरिनको रुद्ध ॥
उत मोह चलावे, तब दल धावे, चेतन पकरो आज ॥
इहविधि दोऊ दल में कल नहि पल,करहिं अनेक इलाज॥१६१॥

(१) तीसरे गुणस्थानमे । (२) दूसरे सासादन गुणस्थानमें । (३) पहिले मिथ्यात्वगुणस्थानको भी स्पर्श करके । (४) चौथे गुणस्थानमे ।

चोपाई १५ मात्रा

मोह सराग भावके बान । मारहिं खैंच जीवको तान ॥
जीव वीतरागहिं निज ध्याय । मारहिं धनुषबाण इहिन्याय॥१६२॥
तबहिं मोहनृप खड्ग प्रहार । मारै पाप पुण्य दुई धार ॥
हंस शुद्ध वेदै निज रूप । यही खरग मारें अरि भूप ॥१६३॥
मोह चक्र ले आरत ध्यान । मारहि चेतनको पहिचान ॥
जीव सुध्यान[1]धर्मकी ओट । आप बचाय करै परचोट ॥१६४॥
मोह रुद्र बरछी[2] गहि लेय । चेतन सन्मुख घाव जु देय ॥
हंस दयालुभावकी ढाल । निजहिं बचाय करहि परकाल॥१६५॥
मोह अविवेक गहै जमदाढि । घाव करै चेतन पर काढि ॥
चेतन ले यमधर सुविवेक । मारि हरै वैरिन की टेक ॥१६६॥
चेतन क्षायक चक्र प्रधान । वैरिन मारि करहि घमसान ॥
अप्रत्याख्यान मूरछित भये । मोह मारि पीछे हट गये ॥१६७॥
जीत्यो चेतन भयो अनंद । बाजहि शुभ बाजे सुखकंद ॥
आय मिले अव्रतके भोग । दर्शनप्रतिमा आदि संयोग ॥१६८॥
व्रतप्रतिज्ञा दूजो भाव । तीजो मिल्यो सामायिक राव ॥
प्रोषधव्रत चौथो बलवंत । त्याग सचित व्रत पंच महंत ॥१६९॥
षष्ठ सुब्रह्मचर्य दिन राय । सप्तम निशिदिन शील कहाय ॥
अष्टम पापारंभ निवार । नवमों दशपरिगह परिहार ॥१७०॥
किंचित ग्राही परम प्रधान । महासुबुद्धि गुणरत्न निधान ॥
दशमों पापरहित उपदेश । एकादशम भवन तज वेश ॥१७१॥
प्राशुक लेय अहार सुजैन । कहिय उदंड विहारी ऐन ॥
ये एकादश भूप अनूप । आय मिले श्रावकके रूप ॥१७२॥

(१) धर्मध्यान । (२) रौद्रध्यानरूपी बरछी ।

चेतन सबसों करै जुहार । परम धरम धन धारन हार ॥
निज बल हंस करहिं आनंद । परम दयाल महा सुखकंद॥१७३॥

दोहा.

इहि विधि चेतन जीतकें, आयो व्रतपुरमाहिं[1] ॥
आज्ञा श्रीजिनदेवकी, नेकु विराधै नाहिं ॥१७४॥
जिह जिह थानक काजके, कीन्हें सब विधि आय ॥
अब भावै वैराग्य तह, सुनहु 'भविक' मन लाय ॥१७५॥

ढाल—पंचमहाव्रत मन धरो सुनि प्रानीरे,
छांडि गृहस्थावास आज सुनि प्रानीरे ॥ टेक ॥

तैं मिथ्यात्त्वदशा विषै सुन प्रानीरे, कीन्हे पाप अनेक आज, सुनि प्रानीरे ॥ भव अनंत जे तै किये सुनि प्रानीरे, रागद्वेष पर संग, आज सुनि प्रानीरे ॥१७६॥ ज्ञान नेकु तोको नही सुनि० तब कीने बहु पाप, आज सुनि प्रानीरे ॥ ते दुख तोकों देय है सु० जो चूको अब दाव, आज सुनि प्रानीरे ॥१७७॥ तैं अव्रतमें जे किये सुनि० । व्रत बिना बहु पाप, आज सुनि प्रानीरे ॥ देश विरतमें पांच जे सुनि०. थावरहिंसालागि आज सुनिप्रानीरे१७८ किये कर्म तैं अतिघने सुनि०। क्यों भुगते विनजाय, आजसुन प्रानीरे मोह महाहितु तैं कियो सुनि०,वह तोको दुख देय आज सुनि प्रानीर ॥१७९॥ जिह जिय मोह निवारियो सुनि० । तिह पायो आनंद, आज सुनि प्रा० ॥मनवच काया योगसों सुनि० । तैं कीने बहु कर्म आज सुनि प्रानिरे ॥१८०॥ वे भुगतेविन क्यों मिटैं सुनि० जे बांधे तें आप,आज सुनि प्रानीरे॥जो तूसंयम आदरैसुनि०। करै तपस्या घोरआज सुनि प्रानीरे॥१८१॥तौ सब कर्मखपायकें सुनि०

(१) पांचवा गुणस्थान ।

पावे परम अनंद आज सुनि प्रानीरे । पूरब बाँधे कर्म जो सुनि० सब छिनमें खप जांहि आज सुनि प्रानीरे ॥ १८२ ॥ इहिविधि भावन भावतै सुनि० । आयो अति वैराग आज सुनि प्रा० । जिय चाहै संयम गहों सुनि० । अब कौन विधि होय, आज सुनि प्रानीरे ॥ १८३ ॥

दोहा

जिय चाहै संयम गहों, मोह लेन नहिं देय ॥
बैठयो आगें रोकिकें, अब प्रमत्तपुर[1] जेय ॥१८४॥
सुभट जु प्रत्याख्यान को, करिकें आगे बान ॥
बैठयों घाटी रोकिकें, मोह माह अज्ञान ॥१८५॥
केतक चाकर जोर जे, भेजे व्रतहिं छिपाय ॥
ते चेतनके दलनमें, निशदिन रहै लुकाय ॥१८६॥
कबहूं परगट होंय कछु, कबहू वे छिपि जांहि ॥
इहिविधि सेना मोहकी, रहै सु इहिदल माहिं ।१८७॥

चौपई.

मोह सकल दलसों पुरद्वार । आय अस्यो सँग ले परिवार ॥
चेतन देशविरत[2] पुर मांहि । आगे पांव धरें कहुं नाहि ॥१८८॥
मोह किये परपंच अनेक । गहिवेको गहि बैठयो टेक ॥
जो चेतन आवै पुर[3] मांहि । तौ राखों गहिकें निज पांहिं॥१८९॥
बहुरि न निकसन छिन इक देहुं । डारि मिथ्यात्व वैर निज लेहुं
यह चेतन मोसों युध करै । जो आवै अबके कर तरै ॥१९०॥
तौ फिर याको ऐसे करो । सुधि बुधि शक्ति सबहि परिहरों ॥
ईहि विधि मोह दगा की बात रचना करहि अनेक विख्यात॥१९१।

(१) छठ्ठे गुणस्थानमे । (२) पांचवां गुणस्थान । (३) छठ्ठे गुणस्थानमें

सुमन खबर सब जियको दई। एक बात सुनि हो प्रभु नई॥
मोर रचै फंदा बहु जाल। तुम मति भूलहू दीन दयाल॥१९२॥
अबके जो पकरैगो तोहि। तौ फिर दोष न दीजो मोहि॥
मैं सब खबर नाथ तुम दई। जैसी कछू हकीकत भई॥१९३॥
तबै हंस इहपुर[1] को पंथ। चल्यो उलंघि महा निर्ग्रंथ॥
अप्रमत्तपुर[2] की लइ राह। जिह मार्ग पंथी बहु साह॥ १९४॥
रोके आय जु प्रत्याख्यान[3]। जुद्ध करे बिन देहुं न जान॥
चेतन कहै जाहु शठ दूर। छिनमें मारि करूं चकचूर॥१९५।
तबहिं जोर नानाविधि करै। चेतन सन्मुख ह्वैकें लरै॥
चेतन ध्यान धनुषकर लेय। मूर्छित[4] कर आगें पग देय॥१९६॥
गिरयो[5] जु प्रत्याख्यान कुमार। चेतन पहुँच्यों सप्तम द्वार॥
मोह कहै देखहु रे जोर। यह तो किये जातु है भोर॥१९७॥
पकरहु सुभट दौरि इह जाहि। ल्यावहु पकरि बेगि मोहि पांहि॥
चाल्यो धर्मराग बलबीर। विकथा वचन दूसरो धीर॥ १९८॥
निद्रा विषय कषाय सु पंच। पकरि हंस ले आए घंच॥
चेतन देखै यह कह भई। मोहि पकरि ले आये दई॥ १९९॥
यह परमत देश है सही। मोकों सुमन अगाऊ कही॥
अब कछु ऐसो कीजे काज। जासो होय अप्रमत राज॥२००॥
अट्ठाईस मूलगुण धरै। बारह भेद तपस्या करै॥
सहै परिसह बीसरु दोय। उभय दया पालै मुनि सोय॥२०१॥
इहिंविधि लदे अप्रमत आय। तबै मोह निज दास पठाय॥

---

(१) छठ्ठे गुणस्थानको (२) सातवें गुणस्थानकी (३) प्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ ये चार कषाय। (४) उपशमरूप। (५) प्रत्याख्यानावरण का उपशम हो गया। (६) सातवें गुणस्थान में (७) गला।

पकरि भगावै करि बहु मान । तबै हंस चितै निज ज्ञान ॥२०२॥
यह तौ मोह करै बहु जोर । मोकोरहन न दे उही ओर। ।
अब याको मैं भिप्टित करों । अप्रमत्तमें तब पग धरों ॥ २०३ ॥
तबहि हंस थिरता अभ्यास । कीन्ही ध्यान अगनिपरकाश ॥
जारीं शक्ति मोह की कई । महा जोरतै निर्बल भई ॥ २०४ ॥
हंस लयो निजबल परकास । कीन्ही अप्रमत्तपुर बास ॥
सुभट तीन[1]मोहके दरे[2]। अरु परमाद सबै अप हरे ॥२०५॥
तज्यो अहार विहार विलास । प्रथम करण कीनो अभ्यास ॥
सप्तम पुरके अंत अनूप । करै कर्ण चरित्र स्वरूप ॥२०६॥
आवै संग मोह दल लेय । पै कछु जोर चलै नहिं जेय ॥
अब जिय अष्टमपुरपगधरै । मोह जु संगगुप्तअनुसरै॥२०७॥
करहि करण चेतन इह ठांव, इजो कह्यो अपूरब नाव ।
जे कबहुं न भये परिणाम, ते इहि प्रगटे अष्टम ठाम॥२०८।
अब चेतन नवमे पुर[3] आय । जामें थिरता बहुत कहाय ॥
पूरब भाव चलहि जे कहीं, ते इह थानक हालै नहीं॥२०९॥
इहिविधि करण तीसरो करै । तबै मोह मन चिंता धरै ॥
यह तो जीते सब पुर जाय।मेरो जोर कछून बसाय॥२१०॥

दोहा.

मोह सेन सब जोरिकें, कीन्हों एक विचार ॥
परगट भये बनै नही, यह मारै निरधार ॥२११॥
तातें सुभट लुकाय तुम, पुरनके मांहि ॥
जो कहुँ आवै दावमें, तो तुम तजियों नाहि ॥२१२॥

(१) नरक तिर्यंच और देव आयुको । (२) उपसमित किये ।
(३) अनिवृत्त करन नामके नवमें गुण स्थान मे ।

हम हू शकति छिपायकें, रहैं दूरलों जाय ॥
जो जीवत बचि हैं कहूं, तो तुम मिलि है आय ॥२१३॥
नगर ग्राम उपशांत पुर, तह लों मेरो जोर ॥
जो ऐहै मो दावमें, तौ मैं करिहों भोर ॥२१४॥
तुम हू सब जन दौरिकें, आय मिल हुगे धाय ॥
तब या हंसहिं पकरिके, देहैं भली सजाय ॥२१५॥
इह विचार सब सैनसों, कीन्हों मोह नरेश ॥
रहे गुप्त दबि दबि सबै, कर कर उपसम भेश ॥२१६॥

चौपाई.

चेतन चर चलाय चहुं ओर । पकरहिं मूढ मोहके चोर ॥
जन छत्तीस गहे ततकाल । मूर्छित करके चले दयाल ।२१७।
सूक्षमसांपरायके[1] देश । आय कियो चेतन परवेश ॥
तिह थानक इक लोभ कुमार । जीत कियो मूर्छित तिह बार॥२१८॥
आगे पांव निशंकित धरै । अब बैरी मोसों को लरै ॥
मैं जीते सब कर्म कठोर । इहि विधि धस्यो निशंकित जोर।२१९।
जब उपशांत मोहके देश । हद्द माहि कीन्हों परवेश ॥
तबही मोह जोर निज कियो । चेतन पकरि उलटी इत दियो२२०
आये सुभट मोहके दौर । मूर्छित छिपे रहे जिह ठौर ॥
पकरि हंस मिथ्यापुर माहिं । ल्याये क्रूर सबहि गहि बांह ।२२१।
इहां न कछु निहचै यह बात । उत्कृष्टे कहिये विख्यात ॥
औरहु थानक है बहु जहां चेतन आय बसत है तहां ॥२२२॥
उपशम समकित जाको होय । मिथ्यापुर लों आवे सोय ॥
क्षायक सम्यकवंत कदाचि । उपसम श्रेणि चढै जो राचि ।२२३।

(१) दशवां गुणस्थान ।

तौ वह चौथे पुरलों आय । गिरकर रहै इहां ठहराय ॥
औरों थानक उपसम गहै। दोऊ सभ्यकवंत जु रहैं ॥ २२४ ॥
अब मिथ्यापुर में दुख देय । मोह बली चेतनको जेय ॥
नाना विध संकट अज्ञान । सहै परिषद यह गुणगान ॥२२५॥
पंच मिथ्यात्व भेद विस्तार। कहत न सुरगुरु पावे पार ॥
सादि मिथ्यात्व नाश जिय लहै । ताके उदै कौन दुख सहै॥२२३॥
सो दुख जानहिं चेतनराम। कै जाने केवल गुणधाम ॥
कहत न लहिये पारावार । दुख समुद्र अति अगम अपार॥२२७॥
इहि विधि सहै करमकी मार । अब चेतन निज करै सम्हार ॥
द्रव्यरु क्षेत्र काल भव भाव । पंचहु मिले बन्यो सब दाब ॥२२८॥

दोहा.

ध्यान सुथिरता राखि के, मनसो कहै विचार ॥
संगति इनकी त्यागिके, अब तू थिर हो यार ॥२२९॥

ढाल— चेत मन भाई रे ॥ एदेशी—

माया मिथ्या अग्र शौच, मन भाईरे, तीनो सल्य निवार, चेत मन भाईरे ॥ क्रोध मान माया तजो मन० लोभ सबै परित्याग, चेत मन भाईरे ॥२३०॥ झूंठी यह सब संपदा, मन० झूठो सब परिवार, चेत मन भाईरे ॥ झूंठी काया कारिमी[१] मन० झूठो इनसों मेह, चेत मन भाईरे ॥२३१॥ यह छिनमें उपजै मिटै मन० तू अविनाशी ब्रह्म, चेत मन भाईरे ॥ काल अनंतहि दुख दियो मन० इसही मोह अज्ञान चेत मन भाईरे ॥२३२॥ जो तोको सुमरण कहूँ मन० आवे रंचक मात्र, चेतमन भाई रे ॥ तो कबहूँ संसार में मन०तू न विषयसुख सेव चेतनमन भाईरे।२३३।

(१) कर्मसे उत्पन्न हुई ।

को कहै कथा निगोद की मन०ताके दुखको पार चेतमन भाई रे ।।
काल अनंत तो तें लहे मन०दु:ख अनंती बार चेतनमन भाई रे२३४
देव आयु पुनि तैं धरयो मन०तामें दुख अनेक चेतमन भाई रे ।।
लोभ महा सुखहैजहां, मन०प्रगट विरह दु:ख होय, चेतमनभाईरे२३५
दु.ख महा बहु मानसी मन०देखे अन्य विभूति चेत मन भाई रे ।।
तिर्यक् गतिमें तू फिरयो मन० संकत लहे अनेकचेतमन भाईरे २३६
अविवेका कारज किये मन०बांधे पाप अनेक, चेत मन भाई रे ।।
नरदेही पाई कहूं मन०सेये पंच मिथ्यात चेत मन भाई रे।।२३७।।
कहुं कारज को तो सरयो मन०जनम गमायो व्यर्थ चेतमनभाईरे ।।
भ्रमत भ्रमत संसारमें मन कबहुं न पायो सुक्ख चैतमनभाईरे२३८
अबके जो तोको भई मन० कछु आतम परतीत चेतनमनभाईरे ।।
धारि लेहुं निजसंपदा मन० दर्शन ज्ञान चरित्र चेतमनभाईरे।२३९।
और सकल भ्रमजालहै मन० तत्व इहै निज काज चेतननभाईरे ।।
सुख अनंत यामें बसे मन निज आतम अवधार चेतमन भाईरे २४०
सिद्ध समान सुछंदहै, मन०निश्चै दृष्टि निहारि, चैतमन भाई रे ।
इहिविधि आतमसंपदा मन०लहि करि आतमकाज चेतमन भाइरे

दोहा.

इहि विधि भाव सुभावतें, पायो परमानंद ।।
सम्यक दरश सुहावनो, लह्यो सु आतमचंद ।।२४१।।
क्षायिक भाव भये प्रगट, महा सुभट बलवंत ।।
कीन्हों जिह छिन एकमें, सुभट सात[1]को अंत ।।२४२।।
मोह तबै निर्मल भयो, अबके कछु विपरीत ।
मेरे सुभट भये शिथिल, लागहिं उनकी जीत ।।२४३।।

(१) दर्शन मोहकी प्रकृति ३ और अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ ।

चेतन ध्यान कमान ले, मारे क्षायक बान ॥
 मोह मूढ छिपतो फिरै, ज्ञान करै घमसान ॥२४४॥
देश विरत पुरमें चढयो, चेतन दल परचंड ॥
 आज्ञा श्रीजिनदेवकी, पालै सदा अखंड ॥२४५॥

सोरठा.

मोह भयो बलहीन, छिप्यो छिप्यो जित तित रहै ॥
 चेतन महा प्रवीन, सावधान ह्वै चलत है ॥२४६॥
अप्रम[1] त्तपुरमाहिं, चेतन आयो विधिसहित ॥
 तहां न जोर बसाहिं, मोह मान भिष्टित भयो ॥ २४७ ॥
चेतन करि तहं ध्यान, सुभट तीन[2] औरहि हरै ॥
 पुनि चारित्र प्रमान, करन[3] किये सप्तम पुरहि ॥२४८॥

दोहा.

तजो अहार विहारविधि, आमन दृढ ठहराय ॥
 छिन छिन सुख थिरता बढै, यों बोलै जिनराय ॥२४९॥
अबहिं अपूरव[4] करनमें, आयो चेतनराय ॥
 कियो करन[5] दूजो जहां थिरता ह्वै अधिकाय ॥२५०॥
नवमें पूरमें आयकें तृतीय करन करि लेय ॥
 हरिके सुभट छतीस[7] तहँ, आगेंको पग देय ॥२५१॥
आयो दशमें पुरविषै, चेतन महा सचेत ॥
सुभट एक[8] इतहू हरयो' तबै ज्ञान सुधि देत ॥२५२॥

---

१ सातवें गुणस्थानमे । २ नरक, तिर्यंच देव आयु । ३ अध: प्रवर्तकरण प्रारभ किया । ४ आठवें गुणस्थानमें । ५ दूजा अपूर्वकरन प्रारंभ किया । ६ नवमें अनिवृत्तकरनामक गुणस्थानमें तीसरा करन प्रारभ किया ७ दर्शनावरणीकी २ मोहिनीकी ४ नामकर्मकी ३० इसप्रकार छत्तीस प्रकृतियें । ८ सूक्ष्म लोभ ।

सावधान ह्वै नाथ जी, रहियो तुम इह ठौर ॥
इहां मोहको जोर है, तुम जिन जानहु और ॥२५३॥
पहिले हानि जो तुम लही: सो थानक इह आहि ॥
तातै मैं विनती करों, प्रभु भूल जिन जाहि ॥२५४॥
तब चेतन कहै ज्ञान सुनि, अब यह पंथ न लेहिं ॥
चलहिं उलंघि उतावले, आगे धोंसा देहिं ॥२५५॥
कहे बहुत संक्षेप सों, इहविधि ये गुणथान ॥
पूरब बरनन विधि सबैं, समझि लेहु गुणवान ॥२५६॥
जो फिरकें बरनन करैं, ह्वै पुनरुक्ति प्रदोष ॥
तातैं थोरे में कह्यो, महा गुणनिके कोष ॥२५७॥

पद्धरिछद.

जहँ चेतन करि सब करम छीन । उपशांत[1] मोहपुर उलँघिलीन ।
आयो द्वादशमहि[2] महमहंत । सब मोह कर्म छय करिय अंत२५८
जहँ यथाख्यात[3] प्रगटयो अनूप । सुखमय सब वेदै निजस्वरूप ।
जहँ अवधि ज्ञान पूरन प्रकास । केवल पुनि आयो निकट भास२५९
सो छीनमोह[4] पुर प्रगट नाम । तिहि थानक विलसैं निजसुधाम ।
अब अंतराय कहुँ करिय अंत । षोडश[5] सब प्रकृति खपाय तंत२६०
जहँ घातिया चारों कर्म नाश । सब लोकालोक प्रत्यक्ष भास ॥
प्रगटयो प्रभु केवल अतिप्रकाश । जहँगुण अनंत कीन्होंनिवास२६१
प्रगटी निज संपति सब प्रतच्छ । विनशी कुलकर्म अज्ञान अच्छ ॥
प्रगटयो जहँ ज्ञान अनंत ऐन । प्रगटयो पुनि दरश अनंत नैन २६२

---

(१) ग्यारहवां गुणस्थान. (२) क्षीणमोह बारहवें गुणस्थानमें (३) यथाख्यातचरित्र. (४) बारहवां गुणस्थान. (५) ज्ञानावर्ण की ५दर्शनवर्णीकी ४ यशकीर्ति १ ऊंच गोत्र १ व अंतराय ५ इसप्रकार १६ प्रकृति.

प्रगटयो तहँ वीर्यंअनंत जोरि । प्रगटयो सुख शक्तिअनंत फोरि ॥
तहँ दोष अठारह गये भाज । प्रभु लागे करन त्रिलोकराज।२६३।
सब इन्द्र आय सेवहिं त्रिकाल । प्रभु जय जयजय जीवनदयाल ॥
तहँ करत अष्टप्रतिहार्य देव । विधिभावसहित नितभविक सेव२६४
प्रभु देत महा उपदेश ऐन । जिहँ सुनत लहत भवि परम चैन ॥
जहँ जनम जरा दुख नाश होय । प्रभु विद्यादेश बताय सोय२६५
इहिंविधि सयोगपुर[1] राज योग । प्रभु करत अनंतविलास भोग ॥
तोउ करम चार नहिं तजहि संग । लगरहे पूर्वतिथिबंध अंग२६६
प्रभु शुक्लध्यानआरूढ होय । अन्तरीक्ष विराजहिं गगन सोय ॥
तहँ आसन दृढ ठहराय एक । पद्मासन कायोत्सर्ग टेक ॥२६७॥
प्रभु डग नहि भरहिं कदाच भूम । तऊ कर्म करत है कौन धूम॥
लिये लिये फिरततिहुँ लोकमाहिं । जिहँ थानक पूरव बंध आहि२६८
कहुँ राखहि थिर कहुँ लै चलंत । कहुँ बानि खिरै कहुँ मौनवंत।
कहुँ समवशरण कहुँ कुटि होय । कहूँ चौदहराजु प्रमानलोय।२६९।
इहविधि ये करम करंत जोर । नहिं जान देत शिववधू ओर ॥
एतेपै निर्बल कहे बखान । मनु जरी जेवरीकी समान ॥२७०॥
तोउ समय समयमें आय आय । चेतन परदेशन थित बधाय ॥
यह एक समय में करत त्याग । थिरहोन देत नहिं दतिय लाग२७१
तऊ सुभट पचासी लगि रहंत । निजनिजथानक निजबल करंत॥
चेतन परदेश न घात होय । तातैं जगपूज्य जिनेश होय ॥२७२॥

दोहा.

चेतन राय सयोगपुर, ,इहविध विलसहि राज ॥
अब चहुँ कर्मन हरनको, ठानहि एक इलाज ॥२७३॥

(१) तेरहवें गुणस्थानमे.

श्री सयोगपुर देशमें, चेतन करि परवेश ॥
लाग्यो हरण सुकर्मको, तजिके जोगकलेश ॥२७४॥
तब सुवेदनी कर्मने, दीनों रस निज आय ॥
दुहुमें एक भई प्रकट, जानहिं श्रीजिनराय ॥२७५॥
हंस पयानो जगततैं, कीनो लघु थितिमांहि ॥
हरिके चारहिं कर्मको, सूधे शिवपुर जाहिं ॥२७६॥
तहँ अनंत सुख शास्वते, विलसहिं चेतनराय ॥
निराकार निर्मल भयो, त्रिभुवन मुकुट कहाय॥२७७॥

चौपाई.

अविचल धाम बसे शिव भूप । अष्टगुणातम सिद्ध स्वरूप ॥
चरमदेह परमित परदेश । किंचित ऊनो थित विनभेश ।२७८।
पुरुषाकार निरंजन नाम । काल अनंतहि ध्रुव विश्राम ॥
भव कदाच न कबहू होय । सुख अनंत विलसै नित सोय ।२७९।
लोकालोक प्रगट सब वेद । षट द्रव्य गुण पर्याय सुभेद ॥
ज्ञेयाकार सकल प्रतिभास । सहजहिं स्वच्छ ज्ञानजिहँ पास २८०।
षट्गुणो हानि वृद्धि परनमैं । चेतन शुद्ध स्वभावहि रमैं ॥
उत्पत व्यय ध्रुव लक्षण जास । इहविधि थिते सबै शिवरास२८१।
जगत जीत जिहि विरुद प्रमान । पायो शिवगढ रतननिधान ॥
गुण अनंत कहिये कत नाम । इहविध तिष्ठहि आतमराम ।२८२।
जिनप्रतिमा जगमें जहँ होय । सिद्ध निसानी देखहु सोय ॥
सिद्ध समान निहारहु आप । जातैं मिटहि सकल संताप ।२८३।
निश्चय दृष्टि देख घटमांहि । सिद्ध रु तोमहिं अन्तर नाहिं ॥
ये सब कर्म होंय जड़ अंग। तू 'भैया' चेतन सर्वंग ॥२८४ ॥

ज्ञान दरश चारित भंडार । तू शिवनायक तू शिवसार ॥
तू सब कर्मजीत शिव होय । तेरी महिमा वरनें कोय ॥२८५ ॥

दोहा.

गुण अनंत या हंसके, किहविधि कहै बखान ॥
थोरेमें कछु बरनये, 'भविक' लेहु पहिचान ॥२८६॥
यह जिनवानी उदधिसम, कविमति अंजुलि मात्र ॥
तेती ही कछु संग्रही, जेतो हो निज पात्र ॥२८७ ॥
जिनवानी जिहँ जिय लखी, आनी निजघटमाहि ॥
तिहँ प्रानी शिवसुख लह्यो, यामें धोखो नाहिं ॥२८८॥
चेतन अरु यह कर्मको, कह्यो चरित्र प्रकाश ॥
सुनत परम सुख पाइये, कहै भगवतीदास ॥२८९॥
सत्रहसौ छत्तीसकी, जेष्ठ सप्तमी आदि ॥
श्री गुरुवार सुहावनो, रचना कही अनादि ॥२९०॥

अक्षरबत्तीसिका

दोहा.

गुण अपार ओंकारके, पार न पावै कोय ॥
सो सब अक्षर आदि ध्रुव, नमैं ताहि सिधि होय ॥१॥

चौपाई.

कक्का कहै करन[1]वश कीजे । कनक कामिनी दृष्टि न दीजे ॥
करिके ध्यान निरंजन[2] गहिये । केवलपद इहविधिसों लहिये ॥२॥

(१) इन्द्रियोंको ।

(२) कर्मरहित आत्मस्वरूपको ।

खक्खा कहै खबर सुनि जीवा। खबरदार ह्वै रहो सदीवा ॥
खोटे फंद रचे अरिजाला। छिन इक जिनभूलहु बहुख्याला ॥३॥
गग्गा कहै ज्ञान अरु ध्याना। गहिकें थिर हूजे भगवाना ॥
गुण अनंत प्रगटहिं ततकाला। गरिके जाहिं मिथ्यातम जाला॥४॥
घग्घा कहै स्वघर पहिचानों। घने दिवस भये फिरत अजानों ॥
घर अपने आवो गुणवंता। घने कर्म को ज्यों ह्वै अंता ॥५॥
नन्ना कहै नैनसौ लखिये। नयनिहचै व्यवहार परखिये ॥
निजके गुण निजमें नहि लीजे। निर विकल्प आतमरस पीजे॥६॥
चच्चा कहै चरचि गुण गहिये। चिन्मूरति शिवसम उर लहियै ॥
चंचल मन थिर करधरि ध्याना। सीखसुगुरुसुन चेतन स्याना॥७॥
छच्छा कहै छांडि जगजाला। छहों काय जीवनप्रतिपाला ॥
छांड अज्ञान भावको संगा। छकि अपने गुण लखि सर्वंगा ॥८॥

चौपाई १५ मात्रा

जज्जा कहै मिथ्यामति जीत। जैनधरम की गहु परतीत ॥
जिहिसों जीव लगै निजकाज। जगतउलंघि होय शिवराज ॥९॥
झज्झा कहै झूंठ पर बीर। झूंठें चेतन साहस धीर ॥
झूठो है यह करम शरीर। झलि रहे मृगतृष्णानीर ॥१०॥
नन्ना कहै निरंजन नैन। निश्चै शुद्ध विराजत ऐन ॥
निज तजकें परमें नहिं जाय। निरावरण वेदहु जिनराय ॥११॥
टट्टा कहै टेव निज गहो। टिककें थिरअनुभव पद लहो ॥
टिकन न दीजे अरिके भाव। टुकटुक सुखको यही उपाव ॥१२॥

चौपाई १६ मात्रा.

ठट्ठा कहै आठ ठग पाये। ठगत ठगत अबकें कर आये ॥
ठगको त्याग जलांजलि दीजे। ठाकुर ह्वैकें तब सुखलीजे[1] ॥१३॥

---

१ जीजे ऐसा भी पाठ है.

डड्डा कहै डंक विष जैसो । डसै भुजंग मोहविष तैसो ॥
डारयो विष गुरु मंत्र सुनायो। डर सब त्याग माल समुझायो॥१४॥
ढड्ढा कहै ढील नहीं कीजे । ढूंढ ढूंढ चेतन गुण लीजे ॥
ढिग तेरे है ज्ञान अनंता । ढकै मिथ्यात्व ताहि करि अंता ॥१५॥

दोहा

नन्ना अक्षर जे लखो, तेई अक्षर नैन ॥
जे अक्षर देखै नहीं, तेई नैन अनेन ॥१६॥

चौपाई १५ मात्रा.

तत्ता कहै तत्त्व निज काज । ताको गहे होय शिवराज ॥
ताको अनुभौ कीजे हंस । तावेदतह्नै तिमिर विध्वंस ॥१७॥
थत्था कहै इन्द्रिन को भूप । थंभन मन कीजे चिद्रूप ॥
थाकहिं सकल कर्मके संग । थिरता सुख तहँ होय अभंग ॥१८॥
दद्दा कहै परगुणको दान । दीने थिरता लहो निधान ॥
दया वहै सुदया जहँ होय । दया शिरोमणि कहिये सोय ॥१९॥
धद्धा कहै धरमको ध्यान । धरि चेतन ! चेतनगुण ज्ञान ॥
धवल परमपद प्रापति होय । ध्रुवज्यों अटलटले नहि सोय॥२०॥
नन्ना नव तत्त्वनसों भिन्न । नितप्रति रहै ज्ञानके चिन्न ॥
निशदिन ताके गुणअवधारि । निर्मल होय करम अघटारि॥२१॥
पप्पा कहै परमपद इष्ट । परख गहो चेतन निज दिष्ट ॥
प्रतिभ सहि सब लोकालोक । पूरण होय सकल सुख थोक॥२२॥
फफ्फा कहै फिरहु कित हंस । फिर फिर मिलै न नरभव वंस ॥
फंद सकल अरिके चकचूरि । फोरि शकति निज आनंद पूरि॥२३॥
बब्बा कहै ब्रह्म सुनि वीर । बर विचित्र तुम परम गँभीर ॥

बोध बीज लहिये अभिराम । बिधिसों कीजे आतमकाम ॥२४॥
भब्भा कहैं भरम के संग । भूलि रहे चेतन सर्वंग ॥
भाव अज्ञानन को कर दूर । भेद ज्ञानतें परदल चूर ॥२५॥
मम्मा कहै मोह की चाल । मेटि सकल यह पर जंजाल ॥
मानहु सदा जिनेश्वरवैन । मीठे मनहु सुधातें ऐन ॥२६॥
जज्जा कहै जैनवृष गहो । ज्यो चेतन पंचमि गति लहो ॥
जानहु सकल आप परभेद । जिहं जाने ह्वै कर्म निखेद ॥२७॥
रर्रा कहै राम सुनि वैन । रमि अपने गुन तज परसैन ॥
रिद्ध सिद्ध प्रगटहि ततकाल । रतन तीन लख होहु निहाल॥२८॥
लल्ला कहै लखहु निजरूप । लोक अग्र सम ब्रह्मस्वरूप ॥
लीन होहु वह पद अवधारि । लोभकरन परतीत निवारि॥२९॥

सोरठा

वव्वा बोलै वैन सुनो सुनोरे निपुण नर ।
कहा करत भव सैन, ऐसो नरभव पायके ॥३०॥

दोहा.

शश्शा शिक्षा देत है, सुन हो चेतन राम ॥
सकल परिग्रह त्यागिये, सारो आतम काम ॥३१॥
खक्खा खोटी देह यह, खिणक माहि खिर जाय ॥
खरी सुआतम संपदा, खिरै न थिर दरसाय ॥३२॥
सस्सा सजि अपने दलहि, शिवपथ करहु विहार ॥
होय सकल सुख सास्वते, सत्यमेव निरधार ॥३३॥
हहा कहै हित सीख यह, हंस बन्यो है दाव ॥
हरिलै छिनमें कर्मको, होय बैठि शिवराव ॥३४॥

क्षक्षा क्षायक[1] पंथ चढि, क्षय कींजे सब कर्म ॥
क्षण इकमें बसिये तहां, क्षेत्र सिद्धि सुख धर्म ॥३५॥

पुण्य पाप जग मूल पचीसिका

पुण्य उदय जब होय, जीव नर देही पावे ।
पुण्य उदय जब होय, तबहिं घर लक्ष्मी आवै ॥
पुण्य उदय जब होय, सबै जिय हुकुम चलावै ।
पुण्य उदय जब होय, तबै शिर छत्र धरावै ॥
जब पुण्य उदय खिस जाय अरु, पाप उदय आवै निकट ।
तब परै नरकमें जीव यह, सहै घोर संकट विकट ॥ १ ॥

पाप उदय परतच्छ, इच्छ नहिं पूजै मनकी ।
पाप उदय परतच्छ, विथा बहु बाढै तनकी ॥
पाप उदय परतच्छ, लच्छ घरमें नहि आवै ।
पाप उदय परतच्छ, जीव बहु संकट पावै ॥
जब पाप उदय मिट जाय अरु, पुण्य उदय आवै प्रबल ।
तब वही जीव सुख भोगवै, उथल पथल इम जगत थल ॥ २ ॥

पुण्यपापको खेल, जगत में बनि रह्यो ।
इनहीके परसाद, सुखी दुखिया कह्यो ॥
दोउ जगत के मूल, विनाशी जानिये ।
इनहीतें जो भिन्न, सुखी सो मनिये ॥ ३ ॥

पुण्य पाप बिन जीव, न कोई पाइये ।
औरनकी कहा चली, जिनेश्वर गाइये ॥
येही जगके मूल, कहे समुझायके ।
जो ईनसेती भिन्न, बशै शिव जायके ॥ ४ ॥

(१) क्षपकश्रेणी मांड.

परमात्म शतक

दोहा.

पंच परम पद प्रणमिके, परम पूरूष आराधि ।
कहो कछू संक्षेप सो, केवल ब्रह्म समाधि ॥१॥
सकल देव में देव यह, सकल सिद्ध में सिद्ध ।
सकल साधु में साधु यह, देख निजात्म रिद्ध ॥२॥
सारे विभ्रम मोहके, सारे जगत मझार ॥
सारे तिनके तुम परे, सारे गुणहिं विसार ॥३॥

सोरठा.

पीरे होहु सुजान, पीरे का रे ह्वै रहे ॥
पीरे तुम बिन ज्ञान, पीरे सुधा सुबुद्धि कहँ ॥४॥
विमल रूप निज मानि, विमल आन तु ज्ञानमें ॥
विमल जगतमें जानि, विमल समलतातें भयो ॥५॥
उजरे भाव अज्ञान, उजरे जिहतें बंध थे ॥
उजरे निरखे भान, उजरे चारहु गतिनतें ॥६॥

यह निजात्म की, समृद्धि सम्पूर्ण देवो मे देव सम्पूर्ण सिद्ध परमात्माओमे सिद्ध और सम्पूर्ण साधुओंमे साधु है इससे हे भव्य, निजात्मरिद्धिको पेख अर्थात् देख ॥२॥

(सारे) सम्पूर्ण जगतमे जो मोहके (सारे) सब विभ्रम है, तुम (सारे) उत्तम उत्तम गुणोको विसारके उन्हीके (सारे) सहारे अर्थात् आश्रय पड़े हो ॥३॥

हे सुजान ! (पीरे) पियरे अर्थात प्यारे हो. (पीरे) दुखित (का रे) क्यों हो रहा है, और तू बिना ज्ञानके ही (पीरे) पीड़े अर्थात दुखित हुआ है, इसलिये अब बुद्धिरूपी अमृत को (पीरे) पान कर ॥४॥

हे विमल आत्मन् ! अपना (विमल) कर्मो से रहित स्वरूप मान करके (तू ज्ञानमें आन) ज्ञानको प्राप्त हो, (विमल) विशेष मलरहित सिद्ध ससार मे से ही जानों, क्योंकि विमल मलसहित से होता है, भावार्थ मोक्ष ससारपूर्वक ही होता है ॥५॥

हे आत्मन् ! वह अज्ञानभाव (उजरे) उजड़े अर्थात विनाश

सुमरहु आतम ध्यान, जिहि सुमरे सिधि होत है ॥
सुमरहिं भाव अज्ञान, सुमरन से तुम होतहो ॥७॥

दोहा.

मैनकाम जीत्यो बली, मैनकाम रस लीन ॥
मैनकाम अपनो कियो, मैनकाम आधीन ॥८॥
मैनासे तुम क्यो भये, मैनासे सिध होय ॥
मैनाहीं वा ज्ञानमें, मैनरूप निज जोय ॥९॥
जोगी सो ही जानिये, वसै स[1]जोगीगेह ॥
सोई जोगी जोग[2] है, सब जोगो पिरतेह ॥१०॥

को प्राप्त हुए जिनसे आत्मा (उजरे) उजले अर्थात प्रगट रूपसे बंद हो रहा था, और जब ज्ञान सूर्य (उजरे) उज्वल देखे गये, तब चारो गतियोसे (उजरे) छूटे । भावार्थ सिद्ध पदको प्राप्त हुए ॥६॥

हे भाई ! ध्यानमें आत्माका स्मरण करो जिसके स्मरणसे कार्य सिद्ध होता है, अथवा जिससे सिद्ध होते हो, अज्ञान भावो के (सुमरेहि) बिलकुल नष्ट होजाने से तुम (सुमरनसे) स्मरण करने योग्य (परमात्मा) हो सकते हो ॥७॥

मैं बलवान कामको न जीत सका और मैनकाम मैं 'नकाम' व्यर्थ रसलीन अर्थात् विषयाशक्त हुआ. मैनकाम कहिये कामदेवके आधीन होकर मैंने अपना काम न किया अर्थात् आत्मकल्याण नहिं किया ॥८॥

(पी) हे प्रिय ! तुम (तारी) ध्यानको भूल करके अथवा तारी कहिये मोहरूपी नसा पी कहिये पिया ओर (तारीतन) संसार की अथवा मोहकी रीतियों में लवलीन हो रहे हो, इसलिये हे प्रवीण, तुम ज्ञानकी (तारी) ताली अर्थात कुंजी (चाबी) 'खोजो' तलाश करो जो तारी)

१ तेरहवे गुणस्थानमें । २ योग्य है

तारी[1] पी तुम भूलके, तारीतन रसलीन ।
तारी खोजहु भर्ममें, जिन भूलहु जिनधर्म ॥११॥
जिन[2] भूलहि तुम भर्ममें, जिन भूलहु जिनधर्म ॥
जिन[3] भूलहु तुम भूलहो, जिन शासनको मर्म ॥१२॥
फिरे बहुत संसारमें, फिरि फिरि थाके नाहिं ॥
फिरे[4] जबहिं निजरूपको, फिरे न चहुंगति माहिं ॥१३॥
हरी खात हो बावरे हरी तोरि मति कौन ॥
हरी भजो आपौ तजो, हरी रीति सुख हौन ॥१४॥

द्वयक्षरी दोहा.

जैनी जाने जैन नै, जिन जिन जानी जैन ॥
जेजे जैनी जैन जन, जानै निज निज नैन ॥१५॥

तुह्मारी (पत) लज्जा है अथवा तुम प्रवीण और तारोपति कहिये ज्ञानरूपी तारीके पतिहो ॥११॥

(१४) हे (बावरे) भोले जीव ! तेरी मति किसने हरली है, जो तू (हरी) (सचित्त वस्तुएँ) खाता है, अब आपौ (ममत्व) छोड करके (हरी) सिद्ध भगवान को भजो अर्थात् ध्यावो. यही सुख देनेवाली (हरी) ताजी अथवा उत्तम रीति है.

(१५) जैनी जैन शास्त्रोक्त नयोको जानता है और (जिन) जिन्होंने उन नय को (जिन) नहीं जानी, उनकी [जैन] जय नही होती है, इसलिये [जेजे] जो जो [जैनजन] जिनधर्मके दास जैनी है वे अपनी २ [नैन] नयोंको अवश्य ही जाने अर्थात् समझें.

(१) ताडका रस-नशा. (२) मत (निषेधार्थ.) (३) जिनेश्वर भगवानको.
(४) पलटै, सन्मुख होवै.

परमारथ परमें नहीं, परमारथ निज पास ॥
परमारथ परिचय बिना, प्राणी रहै उदास[1] ॥१६॥
परमारथ जानें परम, पर[2] नहिं जाने भेद ॥
परमारथ निज परखिबो, दर्शन ज्ञान अभेद ॥१७॥
परमारथ निज जानिबो, यहै परम[3] को राज ॥
परमारथ जाने नहीं, कहौ परम किंहिं काज ॥१८॥
आप[4] पराये वश परे, आपा डारयो खोय ॥
आप आप जाने नहीं, आप प्रगट क्यों होय ॥१९॥
सब सुख साँचे में बसै, साँचों है सब झूठ ॥
साँचो झूठ वहायके, चलो जगतसो रूठ ॥२०॥
जिनकी महिमा जे लखें, ते जिन[5] होंहिं निदान ॥
जिनवानी यों कहत हैं, जिन जानहु कछु आन ॥२१॥
ध्यान धरो निजरूपको, ज्ञान माहि उर आन ॥
तुम तो राजा जगतके, चेतहु विनती मान ॥२२॥
चेतन रूप अनूप है, जो पहिचानें कोय ॥
तीन लोकके नाथकी, महिमा पावे सोय ॥२३॥
जिन पूजहिं जिनवर नमहिं, धरहिं सुथिरता ध्यान ॥
केवलपद महिमा लखहिं, ते जिय सम्यकवान ॥२४॥

(२०) सम्पूर्ण सुख सांचे मे अर्थात् सच्चे स्वरूपमे है, और सांचा अर्थात् पोद्‌गलिक देहरूपी साचा बिलकुल झूठा अर्थात् अस्थिर है इसलिये, (साचो झूठ) इस देहरूपी झूठे, साचेको त्याग करके, ससार सों [रूठ] रुष्ट होकर चल अर्थात् मोक्ष प्राप्त कर.

१ दुखित. २ परन्तु. ३ आतमा. ४ आप अपनेंको नही जानता. ५ तीर्थंकर.

मुद्दत लों परवश रहे, मुद्दत करि निज नैन ॥
मुद्दत आई ज्ञानको, मुद्दत की, गुरु बैंन ॥२५॥
ज्ञान दृष्टि धरि देखिये, शिष्ट[1] न यामहिं कोय ॥
इष्ट[2] करैं पर वस्तुसो, भिष्ट[3] रीति है सोय ॥२६॥
तुम तौ पद्म समान हो, सदा अलिप्त स्वभाव ॥
लिप्त भये गोरस[1] विषें, ताको कौन उपाव ॥२७॥
वेदभाव[5] सब त्यागि करि, वेद[6] ब्रह्मको रूप ॥
वेद[7] माहिं सब खोज[8] है, जो वेदे चिद्रूप[9] ॥२८॥
अनुभवमें जोलों नहीं, तोलों अनुभव नाहिं ॥
जे अनुभव जानें नहीं, ते जी अनुभव माहि ॥ २९ ॥
अपने रूप स्वरूपसों, जो जिय राखै प्रेम ॥
सो निहचै शिवपद लहै, मनसावाचा[10] नेम ॥३०॥

हे आत्मन् ! तुम अपने नेत्रोंको (मुद्दत) मुद्रित अर्थात् बंद करके (मुद्दतलों) बहुत समय तक परवश अर्थात पुग्दलके वशमें रहे, परंतु जब ज्ञानकी (मुद्दत) अवधि आई, तब गुरुके वचनोंने (मुद्दत) मदद अर्थात् सहायता की । २५ ।

जबतक अनुभव = 'अणु-थोडे' भव = संसारमें नही अर्थात जबतक थोडे भव बाकी न रहें, तबतक 'अनुभव' अर्थात सम्यक ज्ञान नहीं है, क्योंकि जो 'अनुभव' (सम्यग ज्ञान) नहीं जानते हैं, वे 'अनुभव' अर्थात पीछे संसार मे ही पडे रहते है, ॥ २९ ॥

१ उत्तम. २ प्यार. ३. 'भृष्ट' खराब. ४ 'गो' इन्द्रियोंके 'रस, विषयमें.
५ स्त्रीपुनपुंसकभाव. ६ वेद अर्थात् ज्ञान. ७ शास्त्रों में. ८. पता.
९ जो—यदि चिद्रूपको जानता हो, तो, नहीं तो कुछ नही.
१० मनसे और वचनसे, नेम-नियम.

प्रश्नोत्तर.

षट दर्शनमें को शिरें ? कहा धर्मको मूल ? ॥
मिथ्याती के ह्वै कहा ? 'जैन' कह्यो सु कबूल ॥३१॥
वीतराग कीन्हों कहा ? को चन्दा की सैन ? ॥
धामद्वार[1] को रहतु है ? 'तारे' सुन शिख बैन ॥३२॥
धर्मपन्थ कौनें कह्यो ? कौन तरै संसार ?
कहो[2] रंकवल्लभ कहा ? 'गुरु' बोलै वच सार ॥३३॥
कहो स्वामि को देव है ? को[3] कोकिल सम काग ?
को न नेह सज्जन करै ? सुनहु शिष्य 'विनराग'॥३४॥
गुरु संङ्गति कहा पाइये ? किहि विन भूलै भर्म ? ॥
कहो जीव काहे मयी ? 'ज्ञान' कह्यो गुरु मर्म ॥३५॥
जिन[4] पूजैं ते हैं किसे ? किहतें जगमें मान ? ॥
पंचमहाव्रत जे धरै, 'धन' बोले गुरु ज्ञान ॥३६॥
छिन छिन छीजै देह नर, कित ह्वै रहो अचेत ॥
तेरे शिरपर अरि चढयो, 'काल' दमामों देत ॥३७॥
जो जन परसों हित करै, निज सुधि सबै विसारि ॥
सो चिन्तामणि रत्न सम, गयो जन्म नर हारि ॥३८॥
जैसे प्रगट पतङ्ग[5] के, दीप माहिं परकाश ॥

छहों दर्शनमें जैनदर्शन श्रेष्ठ है, धर्मोका मूल है, मिथ्यातीके जै न अर्थात जै (विजय) नहीं होती ॥ ३१ ॥

१ घर. २ गरीबका वल्लभ अर्थात प्यारा गुरु (भारी) पदार्थ होता है. ३ जो कोयल विना राग (मोटी आवाज) की हो वह काग समान ही है. ४ जो जिन भगवानकी पूजा करते हैं वे धन अर्थात धन्य है. ५ सूर्य.

तैसे ज्ञान उदोतसों, होय तिमिरको नाश ॥३९॥
चार माँहि जोलों फिरै, धरै चारसों प्रीति ॥
तोलों चार लखै नहीं, चार खूंट यह रीति ॥४०॥
जे लागे दशबीससों, ते तेरह पंचास ॥
सोरह बासठ कीजिये, छांड चारको वास ॥४१॥
विधि कीजे विधि भाव तज, सिद्ध प्रसिद्ध न होय ॥
यहै ज्ञानको अंग है, जो घट बूझै कोय ॥४२॥
वार[1] व्यसन को नृपति जो, प्रभु जूआ तो ज्ञान ॥
तुम राजा शिवलोकके, वह दुरमतिकी खान ॥४३॥
आप अकेलो ब्रह्ममय, परयो भरमके फंद ॥
ज्ञानशक्ति जानें नहीं, कैसें होय स्वछंद ॥४४॥
शिवस्वरूपके लखतहीं, शिवसुख होय अनन्त ॥
शिवसमाधि में रम रहे, शिवमूरति भगवंत ॥४५॥

---

(४०) जीव जब तक चार माँहि अर्थात् चार गतियों (देव, मनुष्य नरक, तिर्यन्च) मे है और चार (क्रोध, मान, माया, लोभ) मे प्रीति रखता है, तब तक चार अनन्त चतुष्टय (अनन्तसुख, अनन्त-ज्ञान, अनन्तबल, अनंतवीर्य को प्राप्त भी नही कर सकता है, अर्थात् कर्मोंसे रहित नहीं हो सकता है, यह चार खूंटकी रीति है।

(४१) जो दश×बीस=तीस कहिये तृष्णासे अथवा स्त्रीसे अनुरक्त हुए, वे तेरह×पंचास—कहिये ते-सठ हैं अर्थात् मूर्ख है इसलिये सोलह+बासठ=अठहत्तर कहिये आठ कर्मो को हतकर तर कहिये तिरो और चार गतियो का वास छोड़ दो। इसमें संख्या शब्दोंसे श्लेष रूप दूसरा अर्थ ग्रहण कर कविने चतुराई दिखाई है.

(१) सात, क्योंकि, सोम आदि वार सात ही हैं।

बालापन गोकुल वसे, यौवन मनमथ राज ॥
वृन्दावन पर रस रचे, द्वारे कुबजा काज ॥४६॥
दिना दशकके कारणे, सब सुख डारयो खोय ॥
विकल भयो संसारमें, ताहि मुक्ति क्यों होय ॥४७॥
या माया सों राचिके, तुम जिन भूलहु हंस ॥
संगति याकी त्यागिके, चीन्हों अपनो अंस ॥४८॥
जोगी[1] न्यारो जोगतें[2],करै जोग[3] सब काज ॥
जोग[4] जुगत जाने सबै, सो जोगी शिवराज[5] ॥४९॥
जाकी महिमा जगतमें, लोकालोक प्रकाश ॥
सो अविनाशी घट विषे, कीन्हों आय निवास ॥५०॥
केवल रूप स्वरूप में, कर्मकलङ्क न होय ॥
सो अविनाशी आतमा, निजघट परगट होय ॥५१॥
धर्म्मा धर्म्म स्वभाव निज, धरहु ध्यान उर आन ॥
दर्शन ज्ञान चरित्रमें, केवल ब्रह्म प्रमान ॥५२॥
निज चन्दा की चाँदनी, जिहि घटमें परकाश ॥
तिहिँ घटमें उद्योत ह्वै, होय तिमिर को नाश ॥५३॥

(४६) कृष्णजी बालापनमे गोकुलमे रहे, यौवनमे मथुरामे, और फिर कुब्जा पर स्त्रीके रसमें मग्न हो उसके द्वारे वृन्दावन में रहे. इसी प्रकार हे जीव ! तू बालापनमे तो 'गोकुल' अर्थात इन्द्रियोके कुल समूहमे अथवा उनकी केलिमें रहा, और जवानी मे मनमथ अर्थात कामदेव के राज्य मे रहा अर्थात वशमें रहा, और पीछे वृन्दावन जो कुटुम्ब समूह उसमे रचा काहेके लिये, 'द्वारे कुबजाकाज, कहिये द्वार जो आस्रव उसके कबजेमें आनेको अथवा द्वार जो मोक्षका उसको कुब्ज अर्थात बन्द करने के लिये,

१ आत्मा. २ मन बचन कायके योगसे. ३ योग्य (उचित) ४ योग ध्यान ५ मोक्ष.

जित देखत तित चांदनी, जब निज नैनन जोत[1]।
नैन मिचत[2] पेखै नही, कौन चांदनी होत ॥५४॥
ज्ञान भान[3] परगट भयो, तम अरि नासे दूर।
धर्म कर्म मारग लख्यो, यह महिमा रहि पूर ॥५५॥
जे तनकी संगति किये, चेतन होत अजान।
ते तनसों ममता धरै, अपुनो कौन सयान[4] ॥५६॥
जे तनसों दुख होत है, यहै अचंभो मोहि।
ते तनसों ममता धरै, चेतन ! चेत न तोहि ॥५७॥
जा तनसों तू निज कहै, सो तन तौ तुझ नाहिं।
ज्ञान प्राण संयुक्त जो, सो तन तौ तुझ माहिं ॥५८॥
जाके लखत यहै लख्यो, यह मैं यह पर होय।
महिमा सम्यक् ज्ञान की, बिरला बूझै कोय ॥५९॥
छहों द्रव्य अपने सहज, राजत हैं जगमाहिं।
निहचै दृष्टि बिलोकिये, परमें कबहूं नाहिं ॥६०॥
जड़ चेतन की भिन्नता, परम देवको राज।
सम्यक् होत यहै लख्यो, एक पंथ द्वै काज ॥६१॥
समुझै पूरण ब्रह्म को, रहै लोभ लौ[5] लाय।
जान बूझ कूए परै, तासों कहा वसाय ॥६२॥
जाकी प्रीतिप्रभावसों, जीत न कबहू होय।
ताकी महिमा जे धरें, दुरबुद्धी जिय सोय ॥६३॥
जाकी परम दशाविषें, कर्म कलंक न कोय।
ताकी प्रीतिप्रभावसों, जीत जगत में होय ॥६४॥
अपनी नवनिधि छांडि कै, मांगत घर घर भीख।
जान बूझ कुए परै, ताहि कहौ कहा सीख ॥६५॥
मूढ मगन मिथ्यात में, समुझै नाहिं निठोल[6]।
कानी[7] कौडी कारणें, खोवै रतन अमोल ॥६६॥
कानो कौड़ी विषय सुख, नरभव रतन अमोल।
पूरब पुन्यहि कर चढ्यो, भेद न लहैं निठोल ॥६७॥
चौरासी लक्षमें फिरै, राग द्वेष परसंग।

१ ज्योति :—प्रकाश २ बन्द होते ३ सूर्य ४ चातुर्य ५ ममता ६ निठल्ला बेकाम मूर्ख ७ फूटी

तिनसों प्रीति न कीजिए, यहै ज्ञानको अंग ॥६८॥
चल चेतन तहां जाइये, जहां न राग विरोध ।
निज स्वभाव परकाशिये, कीजे आतम बोध ॥६९॥
तेरे बाग[1] सुज्ञान है, निज गुण फूल विशाल ।
ताहि विलोकहु परम[2] तुम, छांडि आल जंजाल ॥७०॥
छहों द्रव्य अपने सहज, फूले फूल सुरंग ।
तिनसों नेह न कीजिये, यहै ज्ञान को अंग ॥७१॥
सांच विसरयो भूलके, करी झूठसों प्रीति ।
ताहीतें दुख होत हैं, जो यह गही अनीति ॥७२॥
हित शिक्षा इतनी यहै, हंस सुनहुं आदेश ।
गहिये शुद्ध स्वभाव को, तजिये कर्म कलेश ॥७३॥

सोरठा

ज्यों नर सोवत कोय, स्वप्न माहिं राजा भयो ।
त्यों मन मूरख होय, देखहि सम्पति भरम की ॥७४॥
कहहु कौन यह रीति, मोहि बतावहु परम तुम ।
तिन ही सों पुनि प्रीति, जो नरकहिं ले जात हैं ॥७५॥
अहो ! जगत के राय, मानहु एती वीनती ।
त्यागहु पर परजाय, काहे भूले भरम में ॥७६॥
एहो ! चेतनराय, परसों प्रीति कहा करी ।
जो नरकहिं ले जाय, तिनहीसों राचे सदा ॥७७॥
तुम तौ परम सयान, परसों प्रीति कहा करी ।
किहि गुण[3] भये अयान, मोहि बतावहु सांच तुम ॥७८॥
कर्म्म शुभाशुभ दोय, तिनसों आपौ मानिये ।
कहहु मुक्ति क्यों होय, जो इन मारग अनुसरैं ॥७९॥
माया ही के फन्द, उरझे चेतनराय तुम ।
कैसे होहु स्वच्छन्द, देखहु ज्ञान विचारिके ॥८०॥
एहौ ! परम सयान, कौन सयानप[4] तुम करी ।
काहे भये अयान, अपनी जो रिधि छांडिके ॥८१॥

---

१ बगीचा २ शुद्धात्मा ३ किस कारण ४ चतुरता

तीन लोक के नाथ, जगवासी तुम क्यों भये।
गहहु ज्ञान को साथ, आवहु अपने थलविषे[1] ॥८२॥
तुम पूनों सम चन्द, पूरण ज्योति सदा भरे।
परे पराये फन्द, चेतहु चेतनरायजू ॥८३॥
जानहिं गुण पर्याय, ऐसे चेतनराय हैं।
नैंननि लेहु लखाय, एहो ! सन्त सुजान नर ॥८४॥
सब कोउ करत किलोल, अपने अपने सहजमें।
भेद न लहत निठोल[2], भूलत मिथ्या भरममें ॥८५॥

दोहा

आन न मानहि और की, आनें उर जिनवैन।
आनन देखै परम को, सो आनें शिव ऐन ॥८६॥
'लो' गनको लागो रहे, 'भ' वजल बौरै आन।
ये द्वय[3] अक्षर आदिके, तजहु ताहि पहिचान ॥८७॥
जित देखहु तित देखिये, पुग्दलहीसों प्रीत।
पुग्दल हारे हार अरु, पुग्दल जीते जीत ॥८८॥
पुग्दल को कहा देखिये, धरै विनासी रूप।
देखहु आतमसम्पदा, चिद्विलासचिद्रूप ॥८९॥
भोजन जल थोरो निपट[4], थोरी नींद कषाय।
सो मुनि थोरे कालमें, वसहिं मुक्ति में जाय ॥९०॥
जगत फिरत कै जुग भये, सो कछु कियो विचार।
चेतन अब किन[5] चेतहू, नरभव लह अतिसार[6] ॥९१॥
दुर्लभ दश दृष्टान्तसों, सो नरभव तुम पाय।
विषय सुखन के कारणे, सर्वस[7] चले गँवाय ॥९२॥
ऐसी मति विभ्रम भई, विषयन लागत धाय[8]।
कै दिन कै छिन के घरी, यह सुख थिर ठहराय ॥९३॥

(८६) जो और (अन्य धर्मवालों) की (आन) आज्ञा अथवा लज्जा नहीं मानता है, अपने हृदय में भगवान के बचनों को धारण करता है, और परम अर्थात् शुद्धात्मा का 'आनन' मुख अर्थात् रूप अवलोकन करता है, वह यथार्थ मोक्ष को प्राप्त करता है।

१ मोक्षस्थल २ मूर्ख ३ लोभ ४ अत्यन्त ५ क्यों न ६ श्रेष्ठ ७ सर्वस्व ८ दौड़के

देखहु तो निज दृष्टिसों, जगमें थिर कछु आह।
सबै विनाशी देखिये, को तज गहिये काह ॥९४॥
केवल शुद्ध स्वभाव में, परम अतीन्द्रिय रूप।
सो अविनाशी आतमा, चिद्विलास चिद्रूप[1] ॥९५॥
जैसो शिवखेतहिं[2] वसै, तैसो या तनमांहि।
निश्चय दृष्टि निहारिये, फेर रंच कहुं नाहिं ॥९६॥
चेतन कर्म उपाधि तज, रागद्वेष को संग।
जे प्रगटै निज सम्पदा, शिवसुख होय अभंग ॥९७॥
तू अनन्त सुख को धनी, सुखमय तोहि स्वभाव ॥
करते छिन में प्रगट निज, होय बैठ शिवराव ॥९८॥
ज्ञान दिवाकर प्रगटते, दश दिशि होय प्रकाश।
ऐसी महिमा ब्रह्म को, कहत भगवतीदास ॥९९॥
जुगल चन्दकी जे कला, अरु संयम के भेद।
सो संवत्सर जानिये, फाल्गुन तीज सुपेद ॥१००॥

फुटकर कविता

कवित्त

आतमा अनूपम है दीसै राग द्वेष बिना, देखो भविजीवो! तुम आपमें निहार के। कर्म को न अंश कोऊ भर्मको न वश कोऊ, जाकी शुद्धताई में न और आप टारकें। जैसो शिवखेत बसै तैसो ब्रह्म यहां लसै, यहां वहां फेर नाही देखिये विचारकें। जोई गुण सिद्ध माहिं सोई गुण ब्रह्ममांहि, सिद्ध ब्रह्म फेर नाहिं निश्चैनिरधारके॥

चतुरक्षरी दोहा

अध्यातम में आतमा, मम अध्यातम धाम।
आतम अध्यातम मतै धू मम आतम ताम॥

परमात्मा की जयमाला

दोहा

परम देवं परनाम कर, परमसुगुरु आराधि।
परम सुधर्म चितार चित, कहूं माल गुणसाधि ॥१॥

चौपाई

एकहि ब्रह्म असंखप्रदेश। गुण अनंत चेतनता भेश।
शक्ति अनंत लसै जिह माहिं। जासम और दूसरो नाहिं ॥२॥

१ सिद्धपरमात्मा २ मोक्ष क्षेत्र में

दर्शन ज्ञान रूप व्यवहार। निश्चय सिद्ध समान निहार।
नहि करता नहिं करि है कोय। सदा सर्वदा अविचल सोय ॥३॥
लोका लोक ज्ञान जो धरै। कबहुं न मरण जनम अवतरै।
सुख अनन्त मय जाससुभाव। निरमोही बहु कीने राव ॥४॥
क्रोध मान माया नहिं पास। सहजै जहां लोभ को नास।
गुण थानक मारगना नाहिं। केवल आपु आपुही माहिं ॥५॥
परका परस रंच नाहिं जहां। शुद्ध सरूप कहावै तहाँ।
अविनाशी अविचल अविकार। सो परमातम है निरधार ॥६॥

दोहा

यह निश्चय परमात्मा, ताको शुद्ध विचार।
जामें पर परसै नहीं, 'भैया' ताहि निहार ॥७॥

तीर्थंकर जयमाला

दोहा

श्री जिनदेव प्रणाम कर परम पुरुष आराध।
कहों सुगुण जयमालिका, पंच करणरिपु साध ॥१॥

पद्धरिछंद

जय जय सु अनंत चतुष्टनाथ। जय जय प्रभुमोक्ष प्रसिद्ध साथ। जय जय तुम केवल ज्ञान भास। जय जय केवल दर्शन प्रकाश ॥२॥ जय जय तुम बल जु अनंत जोर। जय जय सुख जास न पार ओर जय जय त्रिभुवन पति तुम जिनंद। जय जय भवि कुमदनि पूर्ण चन्द ॥३॥ जय जय तम नाशन प्रगट मान। जय जय जित इन्द्रिन तू प्रधान। जय जय चारित्र सु यथाख्यात। जय जय अघनिशि नाशन प्रभात ॥४॥ जय जय तम मोहनिवार वीर। जय जय अरि-जीतन परम धीर। जय जय मनमथमर्दन मृगेश। जय जय जम जीतन को रसेश ॥५॥ जय जय चतुरानन हो प्रतक्ष। जय जय जग जीवन सकल रक्ष। जय जय तुम क्रोध कषाय जीत। जय जय तुम मान हरयो अजीत ॥६॥ जय जय तुम मायाहरन सूर। जय जय तुम लोभनिवार मूर। जय जय शतइन्द्रन बंदनीक। जय जय अरि सकल निकंद नीक॥७॥ जय जय जिनवर देवाधिदेव। जय जय निहुंपन भवि करत सेव। जय जय तुम ध्यावहिं भविक जीव। जय जय सुख पावहिं ते सदीव ॥८॥

घत्ता

ते निजरसरत्ता तज परसत्ता, तुम सम निज ध्यावहि घटमें।
ते शिवगति पावें बहुर न आवे, बसें सिधु सुख के तट में ॥६॥

श्री मुनिराज जयमाला

दोहा

परमदेव परनाम कर, सतगुरु करहुं प्रणाम।
कहूं सुगुण मुनिराज के, महा लब्धिके धाम ॥१॥

ढाल—मुनीश्वर बंदो मनधर भाव, ए देशी।

पंच महाव्रत आदरैजी, सनति धरै पुनि पंच।
पंचहु इन्द्रिय जीतकेंजी, रहै बिना परपंच, मुनीश्वर० ॥२॥
षट आवश्यक नित करैजी, जीव दया प्रतिपाल।
सोवें पश्चिम रयन में जी शुद्ध भूमि लघुकाल, मुनीश्वर ॥३॥
स्नान विलेपन ना करैजी, नग्न रहै निरधार।
कचलोंचै हित भावसों जी, एकहि बेर अहार, मुनीश्वर ॥४॥
थिर ह्वै लघु भोजन करैजी, तजें दंतवन काज।
ये पालै निरदोषसोंजी, सो कहिए ऋषिराज, मुनीश्वर० ॥५॥
दोष लगे प्रायश्चित करैजी, धरै सु आतम ध्यान।
सांधै नित परिणामकोजी, सो संयम परवान, मुनीश्वर० ॥६॥
दोष छियालीस टालकै जी, लेवहि शुद्ध आहार।
श्रावक को कुल जानकै जी, जल अचवें तिहँवार, मुनीश्वर० ॥७॥
महा तपस्या व्रत करैजी सहै परीसह घोर।
बीस दोय बहु भेदसोंजी, काय कसै अतिजोर, मुनीश्वर० ॥८॥
निर्मल कर निज आतमाजी, चढैं श्रेणि शुध ध्यान।
'भैया' ते निहचै सहीजी, पावहि पद निर्वान, मुनीश्वर० ॥९॥

दोहा

यह श्री मुनि गुण मालिका, जो पहिरे उरमाहिं।
तिनको शिवसंपति मिलै, जनम मरन भय नाहिं ॥१०॥

मिथ्यात्वविध्वंसनचतुर्दशी

छप्पय

बन्दहुं ऋषभ जिनेन्द्र, अजित संभव अभिनन्दन।
सुमति पद्म सुपार्श्व, बहुरि चन्द्रप्रभु वंदन।

सुविधि शीतल श्रेयांश, वासुपूजहिं सुखदायक ।
विमल अनंत रु धर्म, शान्ति कुंथ जु शिवनायक ।
अर मल मुनसुव्रत नमत, पाप पुंज पंकति हरिय ।
नमि नेम पार्श्व जिन वीर कहुं, भवित्रिकाल बंदन करिय ॥१॥

कवित्त मनहर

मिथ्या गढ भेद भयो अन्धकारनाश गयो, सम्यक प्रकाश लयो, ज्ञान कला भासी है। अणुव्रत भाव धरें महावृत अंगी करें श्रेणीधारा चढ़े केई प्रकृत निवासी है। मोह को पसारो डारि घातियासु कर्म टारि, लोकालोक को निहारि भयो सुखरासी है। सर्वही विनाश कर्म, भयो जिन देव पर्म, वंदै भव्य ताहि नित लोक अग्रवासी है ॥२॥

नेकु राग द्वेष जीत भये वीतराग तुम, तीन लोक पूज्य पद येहि त्याग पायो है यह तो अनूठी बात तुम ही बताय देहु, जानी हम अबहीं सुचित ललचायो है। तनिकहू कष्ट नाहिं पाइये अनन्त सुख, अपने सहजमाहिं आप ठहरायो है। यामें कहा लागत है, परसंग त्यागतही, जारि दीजे भ्रम शुद्ध आपही कहायो है।

वीतराग देव सो तो बसत विदेह क्षेत्र, सिद्ध जो कहावै शिव लोक मध्य लहिये। आचारज उवझाय दुही में न कोऊ यहां, साधु जो बताये सो तो दक्षिण में कहिये। श्रावत पुनीत सोऊ विद्यमान यहां नाहिं, सम्यक के संत कोऊ जीव सरदहिये। शास्त्र की शरधा तामें बुद्धि अति तुच्छ रही पंचम समै में कहो कैसे पन्थ गहिये ॥३॥

तू ही वीतराग देव राग द्वेष टारि देख, तू ही तो कहावै सिद्ध अष्ट कर्म नासतें। तू ही तो आचारज है आचरै जु पंचाचार तू ही उवझाय जिन वाणी के प्रकाशतै। परको ममत्त्व त्याग तू ही है सो ऋषि राय, श्रावक पुनीत व्रत एकादश भासते। सम्यक स्वभाव तेरो शास्त्र पुनि तेरी वाणी, तू ही भैया ज्ञानी निज रूप के निवासतें ॥४॥

मात्रिक सवैया

आलस कहै उद्यम निज ठाको, सोवहु सदन पिछौरी तानें।
काहे रैन दिना शठ धावत, लिख्यो ललाट मिलै सोइ आन ॥

आवत जात मरे जिय केतक, एसे ही भेद हिये पहिचान।
तातें इक्न्तगहो उर अन्तर, सीख यहै धरिये सुख मान ॥५॥
उद्यम कहै अरे शठ आलस, तू सरबर क्यों करै हमारि।
हम मिथ्यात तजें गहे सम्यक, जो निजरूप महा हितकारि॥
श्रावक धर्म्म इकादश भेंदसों, श्री मुनिपथ महाव्रत धारि।
चढ गुण थान विलोक ज्ञेय सब, त्यागहि कर्म बरे शिवनारि॥६॥

कवित्त मनहरन

मिथ्या भाव नाश होय तबै ज्ञान भास होय, मिथ्या के मिलापसों अशुद्धता अनादि की। मिथ्या के संयोग सेती मोक्ष को वियोग रहै मिथ्या के वियोग बात जानें मरजादिकी। मिथ्या की मगनतासों संकट अनेक सहै, मिथ्या के मिटाये भव भांवरि लै वादिकी। ऐसी मिथ्या रीति की प्रतीति को निवारै सन्त करै निज प्रगट शक्ति तोर कर्मादि की ॥७॥

मोह के निवारें राग द्वेषहू निवारें जाहि, राग द्वेष टारें मोह नेक हू न पाइये। कर्म की उपाधि के निवारिवे को पेंच यहै, जड़ के उखारें वृक्ष कैसे ठहराइये। डार पात फल फूल सबै कुम्हलाय जाय, कर्मन के वृक्षन को ऐसे के नसाइये। तबै होय चिदानन्द प्रगट प्रकाश रूप, विलसै अनन्त सुख सिद्ध में कहाइये ॥८॥

जबै चिदानंद निज रूप को संभार देखे, कौन हम कौन कर्म कहां को मिलाप है। राग द्वेष भ्रम ने अनादि के भ्रमाये हमें, तातें हम भूल परे लाग्यो पुण्य पाप है। राग द्वेष भ्रम ये सुभाव तो हमारे नाहिं, हम तो अनंत ज्ञान, भान सो प्रताप है। जैसो शिव खेत बसै तैसो ब्रह्म यहां लसै, तिहूं काल शुद्ध रूप 'भैया' निज आप है ॥९॥

जीव तो अकेलो है त्रिकाल तीनों लोक मध्य, ज्ञान पुंज प्राण जाके चेतना सुभाव हैं। असंख्यात परदेश पूरित प्रमान बन्यो, अपनें सहज माहिं आप ठहराव है। राग द्वेष मोह तो सुभाव में न याके कहूं, यह तो विभाव पर संगति मिलाव है। आतम सुभावसों विभावसों अतीत सदा, चिन्दानन्द चेतवे को ऐसे में उपाव है ॥१०॥

राग द्वेष भ्रम भाव लग्यो है अनादिही को, जाके परसाद परभावनि बहुत है। बंधत अनेक कर्म्म इनको निमित्त पाय, तिनही के फल सब यह पै सहतु है। चहुंगति चौरासी में जनम जरा

के दुःख, मरन मिथ्यात भाव यहै तो लहतु है। याही क्रम काल तो अनन्त बीत गयो तहां, अजहुंलों चिदानन्द चेतो न चहतु है ॥११॥

मिथ्या भाव जालों तोलों भ्रमसों न नातो टूटै, मिथ्या भाव जौलों तौलों कर्म सों न छूटिये। मिथ्या भाव जोलों तौलों सम्यक न ज्ञान होय, मिथ्या भाव जौलों तोलों अरि नाहिं कूटिये। मिथ्या भाव जोलों तोलों मोक्ष को अभाव रहे, मिथ्या भाव जौलों तौलों परसंग जूटिये। मिथ्या को विनाश होत प्रगटै प्रकाशजोत, सूधो मोक्ष पन्थ सूधै नेकु न अहूटिये ॥१२॥

छप्पय

ऊरध मध अध लोक, तासुमें एक तिहूं पन।
किसिहि न कोउ सहाय, याहि पुनि नाहिं दुतिय जन।
जो पूरव कृत कर्म भाव, निज आप बंध किय।
सो दुःख सुख द्वयरूप, आय इहि थान उदय दिय।
तिहि मध्य न कोऊ रख सकति, यथा कर्म विलसंत तिम।
सब जगत जीव जग में फिरत ज्ञानवत भाषंत इम ॥१३॥

दोहा

भैया सुख सागर परखि, निरखि ज्योति निजचन्द।
मिथ्या नाशन चतुर्दशि, पढत बढत आनन्द ॥१४॥

सिद्धचतुर्दशी

दोहा

परमदेव परणाम कर, परम सुगुरु आराध॥
परम ब्रह्म महिमा कहूं, परम धरम गुण साध ॥१॥

कविता

आतम अनोपम है दीसै राग द्वेष विना, देखो भव्यजीव! तुम आपमें निहार कैं। कर्मको न अंश कोऊ भर्म को न वंश कोऊ, जाकी सुद्धताई मैं न और आप टारकैं॥ जैसो शिव खते बसै तेसो ब्रह्म इहां लसै, इहां उहां फेर नाहि देखिये विचारकैं। जेई गुण सिद्धमाहि तेई गुण ब्रह्मपांहि, सिद्ध ब्रह्म फेर नाहि निश्चय निरधारकै ॥२॥ सिद्धकी समान है विराजमान चिदानंद ताही को निहार निजरूप मान लीजिये। कर्म को कलंक अंग पंक ज्यों पखार हरयो, धार निजरूप परभाव त्याग दीजिये॥ थिरता के सुख को

अभ्यास कीजे रैन दिना, अनुभोके रसको सुधार भले पीजिए। ज्ञान को प्रकाश भास मित्र की समान दीसै, चित्र ज्यों निहार चित ध्यान ऐसो कीजिये ॥३॥ भाव कर्म नाम रागद्वेष को बखान्यो जिन, जाको करतार जीव भर्म संग मानिये। द्रव्य कर्म नाम अष्ट कर्म को शरीर कह्यो, ज्ञानावर्णी आदि सब भेद भलै जानिये। नौ करम संज्ञातैं शरीर तीन पावत है, औदारिक वैक्रीय आहारक प्रमानिये ॥ अंतराल समै जो अहार विना रहे जीव, नो करम तहां नाहि याहीतैं बखानिये ॥४॥

सवैया

लोपहि कर्म हरै दुख भर्म सुधर्म सदा निजरूप निहारो।
ज्ञान प्रकाश भयो अघनाश, मिथ्यात्व महातम मोह न हारो॥
चेतनरूप लखो निजमूरत, सूरत सिद्ध समान विचारो।
ज्ञान अनंत वहै भगवंत, वसै अरि पकतिसो तिन न्यारो ॥५॥

छपय छंद

त्रिविधि कर्मतें भिन्न, भिन्न पररूप परसतें।
विविधि जगत के चिह्न, लखै निज ज्ञान दरसतै॥
वसै आपथल माहिं, सिद्ध समसिद्ध विराजहि।
प्रगटहि परम स्वरूप, ताहि उपमा सब छाजहि॥
इह विधि अनेक गुण ब्रह्ममहि, चेतनता निर्मल लसै।
तस पद त्रिकाल वंदत भविक, शुद्ध स्वाभावहि नित बसै ॥६॥
अष्टकर्मतें रहित, सहित निज ज्ञान प्राण धर।
चिदानंद भगवान, बसत तिहूं लोक शीस पर॥
विलसत सुखजु अनंत, संत ताको नित ध्यावहि।
वेदहि ताहि समान, आयु घट माहिं लखावहि॥
इम ध्यान करहि निर्मल निरखि, गुण अनंत प्रगटहिं सरव।
तस पदत्रिकाल वंदत भविक, शुद्ध सिद्ध आतम दरब ॥७॥
ज्ञान उदित गुण उदित, मुदित भई कर्म कषायें।
प्रगटत पर्म स्वरूप, ताहिं निज लेत लखायें॥
देत परिग्रह त्याग, हेत निहचै निज मानत।
जानत सिद्ध समान, ताहि उर अंतर ठानत॥
सो अविनाशी अविचल दरब, सर्व ज्ञेय ज्ञायक परम।
निर्मल विशुद्ध शास्वत सुथिर, चिदानंद चेतन धरम ॥८॥

कवित्त

अरे मतवारे जीव जिन मतवारे होहु, जिनमत आन गहो जिनमत छोरकैं। धरम न ध्यान गहो धरमन ध्यान गहो, धरम स्वभाव लहो, शकति सुफोर कैं॥ परसों सनेहकरो, परम सनेह करो, प्रगट गुण गेह करो मोहदल मोरकैं। अष्टा दशदोष हरो, अष्ट कर्म नाश करो, अष्ट गुण भास करो, कहूं कर जोरकैं॥९॥

वर्ण मैं न ज्ञान नहि ज्ञान रस पंचन में, फर्स में न ज्ञान नहीं ज्ञान कहूं गंध में। रूप में न ज्ञान नहीं ज्ञान कहूं ग्रंथन में, शब्द में न ज्ञान नहीं ज्ञान कर्म बंध में॥ इनतैं अतीत कोऊ आतम स्वभाव लसै, तहां बसे ज्ञान शुद्ध चेतनाके खंध में॥ ऐसो वीतरागदेव कह्यो है प्रकाशभेव, ज्ञानवंत पावै ताहि मूढ़ धावै ध्वंधमें॥१०॥

वीतराग बैन सो तो ऐन से विराजत है, जाके परकाश निजभास पर लहिये। सूझै षट द्रर्व सर्व गुण परजाय भेद, देवगुरु ग्रंथ पंथ सत्य उर गहिये॥ करम को नाश जामें आतम अभ्यास कह्यो, ध्यान की हुतास अरिपंकति को दहिये। खोल दृग देखि रूप अहो अविनाशी भूप, सिद्धकी समान सब तोपें रिद्ध कहिये॥११॥

रागकी जु रीतसु तो बड़ी विपरीत कही, दोषकी जुबात सु तो महादुख दात है। इनही की संगतिसों कर्मबन्ध करै जीव इनही संगतिसों नरक निपात है॥ इनही की संगतिसों बसिये निगोद बीच, जाके दुखदाह को न थाह कह्यो जात है॥ येही जगजाल के फिरावन को बड़े भूप इनही के त्यागे भव भ्रम न विलात है॥१२॥

मात्रिक कवित

असी चार आसन मुनिवर के, तामें मुक्ति होने के दोय।
पद्मासन खड्गासन कहिये, इनविन मुक्ति होय नहि कोय॥
परम दिगम्बर निजरस लीनों, ज्ञान दरश थिरतामय होय।
अष्ट कर्म को थान भ्रष्टकर, शिवसंपति विलसत है सोय॥१३॥

दोहा

जैसो शिवखेतहि वसै, तैसो या तनमाहिं॥
निश्चय दृष्टि निहारतैं, फेर रंच कहुं नाहिं॥१४॥

बारहभावना

चौपाई

पंच परम पद बंदन करों। मन वच भाव सहित उर धरों ॥
बारह भावन पावन जान। भाऊं आतम गुण पहिचान ॥१॥
थिर नहिं दीखहि नैननि वस्त। देहादिक अरु रूप समस्त ॥
थिर विन नेह कौन सों करों। अथिर देख ममता परिहरों ॥२॥
असरन तोहि सरन नहिं कोय। तीन लोकमहिं दृगधर जोय ॥
कोऊ न तेरो राखन हार। कर्मनवस चेतन निरधार ॥३॥
अरु संसार भावना एह। परद्रव्यनसों कीजे नेह ॥
तू चेतन वे जड़ सरवंग। तातें तजहु परायो संग ॥४॥
एक जीव तू आप त्रिकाल। ऊरध मध्य भवन पाताल ॥
दूजो कोऊ न तेरी साथ। सदा अकेलो फिरहिं अनाथ ॥५॥
भिन्न सदा पुद्गलतें रहै। भर्मबुद्धितें जड़ता गहै ॥
वे रूपी पुद्गल के खंध। तू चिनमूरत सदा अबंध ॥६॥
अशुचि देख देहादिक अंग। कौन कुवस्तु लगी तो संग ॥
अस्थी मांस रुधिर गद गेह। मलमूतन लखि तजहु सनेह ॥७॥
आस्रव परसों कीजे प्रीत। तातें बध बढ़हि विपरीत ॥
पुद्गल तोहि अपनपो नाहिं। तू चेतन वे जड़ सब आंहि ॥८॥
संवर परको रोकन भाव। सुख होवे को यही उपाव ॥
आवे नहीं नये जहाँ कर्म। पिछले रुकि प्रगटै निजधर्म ॥९॥
थिति पूरी ह्वै खिर खिर जाहिं। निर्जर भाव अधिक अधिकाहिं ॥
निर्मल होय चिदानंद आप। मिटै सहज परसंग मिलाप ॥१०॥
लोकमाँहि तेरो कछु नाहि। लोक आन तुम आन लखाँहिं ॥
वह षट दर्शन को सब धाम। तू चिनमूरति आतम राम ॥११॥
दुर्लभ पर दर्वनिको भाव। सो तोहि दुर्लभ है सुनि राव ॥
जो तेरो है ज्ञान अनंत। सो नहि दुर्लभ सुनो महंत ॥१२॥
धर्म सुभाव स्वभावहि जान। आप स्वभाव धर्म सोई मान ॥
जब वह धर्म प्रगट तोहि होय। तब परमातम पद लखि सोय ॥१३॥
येही बारह भावन सार। तीर्थंकर भावहिं निरधार ॥
ह्वै वैराग महाव्रत लेंहि। तब भवभ्रमन जलांजुलि देहिं ॥१४॥
'भैया' भावहु भाव अनूप। भावत होहु, चरित शिवभूप ॥
सुख अनंत विलसहु निशदीस। इम भाख्यो स्वामी जगदीस ॥१५॥

सप्तभंगीवाणी

दोहा

बंदों श्रीजिनदेव को, बंदों सिद्ध महंत ।
बंदों केवल ज्ञान जो, लोक अलोक लखंत ॥१॥
सप्तभंगवाणी कहूं जिन आगम अनुसार ।
जाके समुझत समझिये, नीके भेद बिचार ॥२॥

चौपाई

अस्ति नास्ति गुण लच्छनवंत । प्रथम दरब यह भेद धरंत ।
ये गुण सिद्ध करनके काज । सप्त भंग भाखे मुनिराज ॥३॥
प्रथम द्रव्य अस्ति नय एह । नास्ति कहे दूजी नय जेह ।
तीजी अस्तिनास्ति निहार । चौथी अवक्तव्य नय धार ॥४॥
पचमि अस्तिअवक्तव्य कही । छट्ठी नास्तिअक्तव्य लही ।
सप्तमी अस्तिनास्तिअवक्तव्य । इनके भेद कहूं कछु अब्ब ॥५॥
अस्ति दरबको मूल स्वभाव । नास्ति परणम निपट निनाव ।
अथवा और दरब सो नाहिं । ताहि उपेक्षा नाम कहाहिं ॥६॥
अस्तिनास्ति गुण एकहि माहि । दुहुगुण द्रवलच्छन ठहिराहि ।
अस्तिनास्ति विन दर्व न होय । नय साधेतैं भ्रम नहिं कोय ॥७॥
द्रव्यगुण बचननि कह्यो न जाय । वचन अगोचर वस्तु स्वभाय ।
जो कहुं एक अस्तिता सही । तौ दूजी नय लागै नहीं ॥८॥
जो कहुं नास्तिक गुणदोउ माहि । तौ अस्तिकता कैसें नाहिं ।
अस्ति नास्ति दोउ एकहि वेर । कही न जाय वचन को फेर ॥९॥
दुहूको एक विचार न होय । इक आगें इक पीछें जोय ।
कोउ गुण आगें पीछें नाहिं । दोउ गुण एक समय के माहिं ॥१०॥
तातै वचन अगोचर दर्व । सातों नय भाखी ए सर्व ।
नय समुझैतैं वस्तु प्रमान । नय समझे जिय सम्यकवान ॥११॥
नय नहि लखै मिथ्याती जीव । तातैं भ्रामक रहै सदीव ।
'भैया' जे नय जानहि भेद । तिनके मिटहि सकल भ्रमखेद ॥१२॥

चौदह गुणस्थानवर्तिजीवसंख्या वर्णन

दोहा

वीतराग के चरनयुग, वंदों दोउ करजोर ।
कहूं जीव गुणथानके, अष्टकर्म दलभोर ॥१॥

जिहं चलबो जिहं पंथको, सो ढूंढै बहु साथ ।
तैसें पंथिक मोक्षके, ढूंढै लेहिं जिननाथ ॥२॥

चौपाई

चौदह गुण थानक परमान । जियकी संख्या कहौं बखान ।
इहि मगचलै मुकत सो होय । रहै अर्द्ध पुद्गललों कोय ॥३॥
प्रथम मिथ्यात्व नाम गुणथान । जीव अनंतानंत प्रमान ।
तिन के पंचभेद विस्तार । बरनों जिन आगम अनुसार ॥४॥
एक पक्ष जो गहिकै रहै । दूजी नय नाहीं सरदहैं ।
वो मिथ्याती मूरख जीव । ज्ञान हीन ते कहैं सदीव ॥५॥
जिन आगम के शब्द उथाप । थापै निजमति वचन अलाप ।
सुजस हेत गुरुतर मनधरै । सो विपरीति भवदुख भरै ॥६॥
देव कुदेव न जाने भेव । सुगुरु कुगुरु की एकहि सेव ।
नमै भगतिसों बिना विवेक । विनय मिथ्याती जोव अनेक ॥७॥
भाति भांति के विकलप गहै । जोव तत्व नाही सरदहै ।
शून्य हिये डोलै हैरान । सो मिथ्याती संशयवान ॥८॥
गहल रूप वरतै परिणाम । दुखित महान न पावै धाम ।
जाको सुरति होय नहिं रंच । ज्ञानहीन मिथ्याती पंच ॥९॥

दोहा

इनहि पंच मिथ्यात्व वश, जीव बसे जगमाहि ।
इनहिं त्याग ऊपर चढै, ते शिवपाथिक कहाहिं ॥१०॥
सासादन गुन थानसों, अरु अयोग परजंत ।
उत्कृष्टी संख्या कहूं, भाखी श्रीभगवन्त ॥११॥

चौपाई

सासादन गुणथानक नाम । बावन कोटि जीव तिहं ठाम ।
एक अरब अरु कोटि जु चार । मिश्रनाम ती उरधार ॥१२ ।
अव्रत है चौथो गुणवंत । सात अरब जिय तहां बसंत ।
पंचम देशविरतपुर कहे । तेरह कोटि जीव जहं लहे ॥१३॥
पंच कोटि अरु त्राणवलाख । सहस अठयाणवे ऊपरि भाख ।
द्वयसो छह जिय छट्ठेथान । परमादी मुनि कहे बखान ॥१४॥
अप्रमत्त सप्तम परतक्ष । कोटि दोय अरु छयानव लक्ष ।
सहस निन्याणव इकसो तीन । एते मुनि संयम परवीन ॥१५॥

उपसम श्रेणी चढै गुणवान । अष्टम नवम दशम गुण थान ।
हूं द्वै सो निन्याणव कहे । अठ सत्ताणव सब सरदहे ॥१६॥
अष्टम क्षपक पंथ जिय कोय । शतक पंच अट्ठाणव होय ।
नवमें गुण थानक जिय जबै । शतक पंच अट्ठाणव सबैं ॥१७॥
दशमें गुण थानक मुनिराय । शनक पंचअट्ठाणव थाय ।
एकादश श्रेणी उपशत । द्वैसी अरु निन्याणव तंत ॥१८॥
द्वादशमों गुण क्षीण कषाय । पंच अठाणव सब मुनिराय ।
अब तेरह में केवल ज्ञान । तिनकी संख्या कहूं बखान ॥१६॥
लाख आठ केवलि जिन सुनो । सहस अठाणव ऊपर गुनो ।
शतक पंच अरु ऊपर दोय । एते श्री केवलि जिन होय ॥२०॥
अब चौदम अयोग गुण थान । पंच अठवाण सब निर्वान ।
तेरह गुण थानक जिय लहूं । सबकी संख्या एकहि कहूं ॥२१॥
आठ अरब सतहत्तर कोड़ । लाख निन्याणव ऊपर जोड़ ।
सहस निन्याणव नव सौ जान । अरु सत्याणव सब परमान ॥२२॥
जब लों जिय इह थानक माहिं । तब लों जिय जग वासि कहांहि ।
इनहि उलंघि मुकतिमे जांहि । काल अनंतहि तहां रहांहि ॥२३॥
सुख अनंत विलसंहि तिहं थान । इहि भाख्यो श्री भगवान ।
भैया सिद्ध समान निहार । निज घट मांहि वहै पद धार ॥२४॥
संवत सत्रह सैंतालीस । मारगसिर दशमी शुभ दीस ।
मंगल करन महा सुखधाम । सब सिद्धनप्रति करूं प्रणाम ॥२५॥

पन्द्रह पात्रकी चौपाई

दोहा

नमहुं देव अरहंतको, नमहुं सिद्ध शिवराय ।
नमहुं साधु के चरनको, योग त्रिविधिके लाय ॥१॥
पात्र कुपात्र अपात्र के, पंद्रह भेद विचार ।
ताकी कछु रचना कहूं, जिन आगम अनुसार ॥२॥
तीन पात्र उत्तम महा, मध्यम तीन बखान ।
तीन पात्र पुनि जघन हैं, ते लीजे पहिचान ॥३॥
तीन कुपात्र प्रसिद्ध हैं, अरु अपात्र पुनि तीन ।
ये सब पन्द्रह भेद हैं, जानहु ज्ञान प्रवीन ॥४॥

चौपाई

उत्तम माहिं माह अरु श्रेष्ठ । तीर्थंकर कहिये उत्कृष्ट ।
मुनि मुद्रा में लेहिं अहार । वह दातार लहै भव पार ॥५॥
उत्तम माहिं मध्यके अंग । श्रीगणधर बरने सरबंग ।
चार ज्ञान संयुक्त प्रधान । द्वादशांगके करहिं बखान ॥६॥
उत्तम माहि जघन्य जु होय । सामान्यहि मुनि वरने सोय ।
दर्बित भावित शुद्ध अनूप । परम दयाल दिगम्बर रूप ॥७॥
मध्यम पात्र अणुव्रत धार । तिनके तीन भेद विस्तार ।
दर्वित भावित गुण संयुक्त । रहै पाप किरयासों मुक्त ॥८॥
उत्तम ऐलक श्रावक पास । एक लंगोटी परिग्रह जास ।
मठ मंडप में करहि निवास । एकादशम प्रतिज्ञा भास ॥९॥
दूजो श्रावक क्षुल्लक नाम । कुछ अधिको परिग्रह जिहि ठाम ।
पीछी और कमडल धरै । मध्यम पात्र यही गुण वरै ॥१०॥
अरु दश प्रतिमा धारी जेह । लघु पात्रनमें बरने तेह ।
इह विधि यह पचम गुण थान । मध्यम पात्र भेद परवान ॥११॥
अब लघु पात्र कहूं समुझाय । उत्तम मध्यम जघन कहाय ।
उत्तम क्षायिक समकितवत । जिनके भावन को नहि अंत ॥१२॥
मध्यम पात्रसु उपसम धार । जिनकी महिमा अगम अपार ।
वेदक समकित जाके होय । लघु पात्रन में कहिये सोय ॥१३॥
तीन कुपात्र मिथ्याती जीव । द्रव्यलिंग जो धरहिं सदीव ।
ज्ञान बिना करनी बहु करै । भ्रमि भ्रमि भवसागरमें परै ॥१४॥
मुनिकी सम मुद्रा निरधार । सहै परीसह बहु परकार ।
जोव स्वरूप न जाने भेव । द्रव्य लिंगी मुनि उत्तम एव ॥१५॥
मध्यम पात्र सु श्रावक भेष । दर्वित किरिया करै विशेष ।
अन्तर शून्य न आतम ज्ञान । मानत है जिनको गुणवान ॥१६॥
जघन्य कुपात्र कहूं विख्यात । जाके उर बरतै मिथ्यात ।
समकितकीसी ऊपर रीति । अंतर सत्य नहीं परतीति ॥१७॥
कहू अपात्र दुहू विधि भ्रष्ट । दर्वित भावित क्रिया अनिष्ट ।
परिग्रहवत कहावै साधु । मिथ्यामत भाखै अपराध ॥१८॥
श्रावक आप कहै जगमाहिं । श्रावकके गुम एकहु नाहिं ।
भक्ष्याभक्ष्य न जाने भेद । मध्य अपात्र करै बहु खेद ॥१९॥
जघन अपात्र यहै विरतंत । कहै आपको समकितवत ।
निहचे अरु नांहीं व्यवहार । दर्वित भावित दुहुं विधि छार ॥२०॥

दर्वित गुण समकित के जेह। ग्रंथनमें बरने सबतेह ॥
तिहं माफिक नाही जिहूँ चाल। ते मिथ्याती जीव त्रिकाल ॥२१॥
भावित समकित जीव सुभाय। सो निहचै जानै मुनिराय ॥
कै जानै जो वेदै जीव। ऐसें गणधर कहैं सदीव ॥२२॥

दोहा

इहविधि पन्द्रह पात्रके, गुण निरखै गुणवंत।
यथा अवस्थित जानके, धारहिं हिरदै संत ॥२३॥
निज स्वभाव रसलीन जे, ते पहुंचे शिव ओर।
मिथ्याती भटकत फिरैं, विनवें दास किशोर ॥२४॥

ब्रह्मा ब्रह्म निर्णय चतुर्दशी

दोहा

असिआउसा जु पचपद, वंदों शीस नवाय।
कछु ब्रह्मा अरु ब्रह्मकी, कहूं कथा गुणगाय ॥१॥
ब्रह्मा ब्रह्मा सब कहैं, ब्रह्मा और न कोय।
ज्ञान दृष्टि धर देखिये, यह जिय ब्रह्मा होय ॥२॥
ब्रह्मा के मुखचार हैं, याहूके मुख चार।
आख नाक रसना श्रवण, देखहु हिये विचार ॥३॥
आख रूप को देखकर, ग्रहण करे निरधार।
रागी द्वेषी आतमा, सबको स्वादनहार ॥४॥
नाक सुबास कुबास को, जानत हैं सब भेद।
राचै विरचै आतमा, यों मुखबोले वेद ॥५॥
रसना षटरस भुजती, परी रहै मुख मांहि।
रीझै खीजै आतमा, मुख यातैं ठहराहि ॥६॥
श्रवण शब्द के ग्रहणको, इष्ट अनिष्ट निवास।
मुख तो सोही प्रगट है, सुख दुख चाखै तास ॥७॥
येही चारों मुख बने, चहुं मुख लेय अहार।
तातैं ब्रह्मा देव यह, यही सृष्टि करतार ॥८॥
हृदय कमलपर बैठिकें, करत विविध परिणाम।
कर्त्ता नाही कर्मको, ब्रह्मा आतम राम ॥९॥
चार वेद ब्रह्मा रचे, इनहु तजे कषाय।
शुद्ध अवस्था ये भये, यह[1] विन शुद्धि कहाय ॥१०॥

१ ब्रह्मा

नाना रूप रचैं नये, ब्रह्मा विदित कहान ।
नाम कर्मजिय संगलैं, करत अनेक विनान ॥११॥
ब्रह्मा सोई ब्रह्म[1] है, यामें फेर न रंच ।
रचना सब याकी करी, तातैं कह्यो बिरंच[2] ॥१२॥
जैते लक्षण ब्रह्मके, ते ते ब्रह्मा माहि ।
ब्रह्मा ब्रह्म न अंतरो, यों निश्चय ठहराहि ॥१३॥
जो जानैं गुण ब्रह्मके, सो जानै यह बात ।
'भैया' थोरे कथनमें, कही कथा विख्यात ॥१४॥

अष्टकर्म की चौपाई

दोहा

नमो देव सर्वज्ञ को, वीतराग जस नाम ।
मन वच शीस नवाइके, करों त्रिविधिपरणाम ॥१॥

चौपाई

एक जीव गुण धरै अनंत । ताको कछु कहिये विरतत ।
सब गुण कर्म अछादित रहैं । कैसें भिन्न भिन्न तिह कहैं ॥२॥
तामें आठ मुख्य गुन कहे । तापें आठ कर्म लगि रहे ॥
तिन कर्मन की अकथ कहान । निहचै तो जाने भगवान ॥३॥
कछु व्यवहार जिनागम साख । वर्णन करों यथारथ भाख ।
ज्ञानाबरन कर्म जब जाय । तब निज ज्ञान प्रगट सब थाय ॥४
ताके पच भेद विस्तार । तथा अनंतानंत अपार ॥
जैसे कर्म घटहि जिहं थान । तैसो तहाँ प्रगट ह्वै ज्ञान ॥५॥
जैसो ज्ञान प्रगट ह्वै जहां । तैसी कछु जानै जिय तहां ॥
दूजो दर्श आवरण और । गये जोव देखहिं सब ठौर ॥६॥
ताकी नौ प्रकृती सब कही । तामें शक्ति सबहि दबि रही ॥
जैसो घटै आवरन जोय । तैसो तहं देखै जिय सोय ॥७॥
निराबाध गुण तीजो अहै । ताहि वेदनी ढांके रहै ॥
साता और असाता नाम । तामहि गर्भित चेतन राम ॥८॥
जैसी द्वै प्रकृती घट जाय । तैसी तह निर्मलता थाय ॥
जबहि वेदनी सब खिर जाय । तब पंचमि गति पहुंचै आय ॥९॥

---

[1] जीव [2] ब्रह्मा

चौथो महा मोह परधान । सब कर्मन में जो बलवान ॥
समकित अरु चारित गुणसार । ताहि ढकै नाना परकार.॥१०॥
जहं जिम घटहि मोहकी चाल । तह तिम प्रगट होय गुणमाल ॥
ज्यों ज्यों घटै मोह जियपास । त्यों त्यों होय सत्य गुणवास ॥११॥
ताकी वीस आठ विधि कही । यथा योग्य थानक सरदही ।
जग में जंतु बसे चिरकाल । सो सब मोह अछादित बाल ॥१२॥
मोह गये सब जानै मर्म । मोह गये प्रगटै निजधर्म ॥
मोह गये केवलिपद होय । मोह गये चिर रहै न कोय ॥१३॥
पंचम आयुकर्म जिन कहै । अवगाहन गुण रोके रहै ॥
जब वे प्रकृति आवरण जाहिं । तब अवगाहन थिर ठहराहिं ॥१४॥
ताकी चार प्रकृति जगनाम । जाके गये लहै शिवधाम ॥
नाम कर्म षष्ठम निरतत । करहि जीवको मूरतिवंत ॥१५॥
अमूरतीक गुण जीव अनूप । तापै लगी प्रकृति जड़रूप ॥
पुद्गल लगै कहावें जीव । एकेंद्रयादिक पंच सदीव ॥१६॥
उदय योग नाना परकार । चेतन वसै शरीरमझार ॥
जैसे तनमें करहि निवास । तैसो नाम लहै जिय तास ॥१७॥
तनकी संगति कष्ट अपार । सहै जीव संकट बहु बार ।
जामन मरन अनंता करै । ताके दुःख कहु को उच्चरै ॥१८॥
प्रकृति त्राणवें ताकी कही । जगत मूल येही बनि रही ।
जब ये प्रकृति सबहि खिरजाहिं । तबहिं अरुपी हंस कहाहिं ॥१९॥
सप्तम गोत करम जिय जान । ऊंच नीच जिय यही बखान ।
गुण जु अगुरु लघु ढांके रहै । तातैं ऊंच नीच सब कहै ॥२०॥
जब ये दोउ आवरन जांहि । तब पहुंचै पंचमिगतिमाहिं ।
अष्टम अन्तराय अरि नाम । बल अनंत ढांकै अभिराम ॥२१॥
शकति अनंतो जोव सुभाय । जाके उदै न परगट थाय ।
ज्यों ज्यों घटहि आवरण कहो । त्यों त्यों प्रगट होय गुण सही २२
पांच जाति के विकट पहार । याकी ओट सबै सुख सार ।
इन विन गये न पावै मूल । इन विन गये रह्यो जिय भूल ॥२३॥
ये सबही सुख के दरबान । ये ही सबके आगेवान ।
जब ये अंतराय मिट जाहिं । तब चेतन सब सुख के माहिं ॥२४॥

दोहा

ये ही आठों कर्म मल, इन में गर्भित हंस ।
इनकी शकति विनाशकैं, प्रगट करहि निज बंस ॥२४॥
इहि बिधि जीव अनंत सब, वसत यही जगमाहि ।
इनहिं त्याग निर्मल भये, ते शिवरूप कहाहिं ॥२६॥
'भैया' महिमा ब्रह्म की, ऐसे बनी अनाद ।
यथा शक्ति कछु वरणयी, जिन आगम परसाद ॥२७॥

सुपंथ कुपंथ पचीसिका

दोहा

केवल ज्ञान स्वरूप में, राजत श्री जिनराय ।
तास चरन वंदन करहुं, मन वच शीस नवाय ॥१॥
कहू सुपन्थ कुपन्थ के, कवित पचीस वखान ।
जाके समुझत समझिये, पन्थ कुपन्थ निदान ॥२॥

कवित्त

तेरो नाम कलपवृच्छ इच्छा को न राखै उर, तेरो नाम कामधेनु कामना हरत है । तेरो नाम चिन्तामन चिन्ता को न राखै पास, तेरो नाम पारस सो दारिद डरत है । तेरो नाम अम्रत पियेतै जरा रोग जाय, तेरो नाम सुखमूल दुःख को दरत है । तेरो नाम वीतराग धरै उर वीतरागा, भव्य तोहि पाय भवसागर तरत है ॥३॥

सुन जिनवानी जिहँ प्रानी तज्यो राग द्वेष, तेई धन्य धन्य जिन आगम में गाये है । अमृत समानी यह जिह नाहिं उर आनी, तेई मूढ़ प्रानी भवभांवरि भ्रमाये है । याही जिनवानी को सवाद सुख चाखो जिन, तेही महाराज भये करम नसाये हैं । तातै दृग खोल 'भैया' लेहु जिनवानी लखि, सुख के समूह सब याही में बताये हैं ॥४॥

अपने स्वरूप को न जानै आप चिदानंद, वहै भ्रम भूलि वहै मिथ्या नाम पावै है । देव गुरु ग्रन्थ पन्थ सांच को न जाने भेद, जहां तहां झूठे देख मान शीस नावै है । चेतन अचेतन ह्वै हिंसा करै ठौर ठौर, बापुरे विचारे जोव नाहक सतावै है । जलके न थल के नपौन अग्नि फल के न, त्रसनि विराधि मूढ़ मिथ्याती कहावै है ॥५॥

केई भये शाह केई पातशाह पहुमिप, केई भये मीर केई बड़े ही फकीर है । केई भये राव केई रंक भये विललात, केई भये कायर औ केई भये

धीर है। केई भये इन्द्र केई चन्द्र छविवंत लसै, केई भये पौन अरु केई भये नीर हैं। एक चिदानंद केई स्वांग में कलोल करै, धन्य तेही जीव जे भये तमासगीर हैं ॥६॥

सवैया.

परमान सबै विधि जानव है, अरु मानत है मत जे छह रे।
किरिया कर कर्मनि जोरत है, नहिं छोरत है भ्रमजे पहरे॥
उपदेश करै व्रत नेम धरै, परभावनको उर नाहिं हरे।
निज आतम को अनुभौ न करै, ते परे भवसागर में गहरे ॥७॥

सवैया मात्रिक.

दुर्भर पेट भरन के कारन, देखत हो नर क्यों बिललाय।
झूठ सांच बोलत याके हित, पाप करत नहिं नेक डराय॥
भक्ष्य अभक्ष्य कछु न विचारत, दिन अरु रात मिलै सो खाय।
उत्तम नरभव पाय अकारथ, खोवत बादि जनम सब आय ॥८॥

कवित्त.

करता सबनके करम को कुलाल जिम, जाके उपजाये जीव जगत में जे भये। सुर तिरजंच नर नारकी सकल जंतु, रच्यो ब्रह्मांड सब रूप के नये नये। तासों वैर करवे को प्रगटे कहांसों आय, ऐसे महा बली जिहँ खातिर में ना लये। ढूंढै चहुं ओर नहिं पावै कहूं ताको ठोर, ब्रह्माजू की सृष्टि को चुराय चोर लै गये ॥९॥

चौपरके खेल में तमासो एक नयो दीसै, जगत की रीति सब याही में बनाई है। चारों गति चारों दाव फिरबो दशा विभाव, कर्मवर्ती जीव सार मिल बिछुराई है॥ तीनो योग पांसे परै ताके तैसे दाव परे, शुभ ओ अशुभ कर्म हार जीत गाई है। फिरबो न रह्यो जब कर्म खप जांहि सब, पंचम गति पावै ये 'भैया' प्रभुताई है ॥१०॥

देहके पवित्र किये आतमा पवित्र होय, ऐसे मूढ भूल रहे मिथ्या के भरम में। कुल के आचार को विचारै सोई जानै धर्म, कंदमूल खाये पुण्य पाप के करम में॥ मूंड के मुंडाये गति देह के दगाये मति, रातन के खाये गति मानत धरम में। शस्त्र के धरैया देव शास्त्र को न जानै भेव, ऐसे हैं अबेव अरु मानत परम मैं ॥११॥

नदी के निहारत ही आतमा निहार्यो जाय, जो पै कोउ ज्ञानवंत देखै दृष्टि धरकें। एक नीर नयो आय एक आगें चल्यो जाय, इहां थिर ठहराय रह्यो पूर भरकें॥ ताहू में कलोल कई भांतिकी तरंग

उठै, बिनसै पुनि ताहू में अनेकधा उछरिकें। तैसें इह आतम में कई परिणाम होय, ऐसे परवान है अनंत शक्ति करकें ॥१२॥

जगतकै जीवन जीवावै जगदीश कोउ, बाकी इच्छा आवै तब मार डारियतु है। वाहीके हुकुम सेती काज सब करै जीव, विना बाके हुकम न तृण डारियतु है॥ करता सबनके क मन को वही आप, भोगता दुहू में कौन जो विचारियतु है। करता सो भोगता कि करै और भुंजै और, याको कछु उत्तर न सूधो धारियतु है॥१३॥

जोलों यह जीवके मिथ्यात्व दृष्टि लगि रही, तौलों सांच झूठ सूझै झूठ सूझै सांच है। राग द्वेष बिना देव ताहि कहै रागी देव, जीवको न जाने मेव, मानै तत्व ांच है॥ वस्तु के स्वभाव को न जान्यो यह सांचो धर्म, किरियाको धर्म मानै मदिराकी मांच है। सत्यारथ वानी सरवज्ञने पिछानी 'भैया', ताहि न पिछानी तोलों नाचे कर्म नाच है॥१४॥

कोऊ कहै सूर सोम देव हैं प्रत्यक्ष दोउ, कहै रामचन्द्र राखै आवागौनसों। कोउ कहै ब्रह्मा बडो सृष्टि को करैया अहै, कोउ कहै महादेव उपज्यो न जौनसों॥ कोउ कहै कृष्ण सब जीव प्रतिपाल करै, कोउ लगि रहे हैं भवानी जू के भौनसों। वही उपाख्यान सांचो देखिये जहांन बीचि, वेश्याघर पूत भयो बाप कहै कौनसों॥१५॥

सवैया इकतुकिया.

निश द्यौस यहै मन लाग्यो रहै, सु मुनिन्द्र के पाँय कबैं परसों।
जिन देवके देखनकी रटनाजु, कहों किम जाहुं विना परसों॥
कबधों शिवलोक में जाय वसों, सुख संधि लहों सजिकें परसों।
कब जोग मिलै इम इच्छित है भवि, आज कै काल्हि किधोंपरसों।१६।

कवित्त.

जाके कुल धर्म मांहि सरवज्ञ देव नाहि, पूछत ते कौन पांहि हिर दैकी बात को। संशै उर पूरि रहै ज्ञान गुण दूर रहै, महातम भूरि रहै लखे सार गात को॥ मिथ्या की लहरि आवै सांच की न पंथ पावै, जहां तहां भूलि धावै करै जीव घातको। झूठो ही पुरान मानै झूठ देव देव ठानै, जैसे जन्म अन्ध नर देखै ना प्रभात को॥१७॥

राजा के परजा सब बेटा बेटी की समान, यह तो प्रत्यक्ष बात लोक में कहान है। आन जगदीस अवतार धरयो धरनी पें, कुंजनि में केल करी जाको नाम कान्ह है ॥ परमेश्वर करै पर बधू सों अनाचार, कहते न आवैं लाज ऐसो ही पुरान है। अहो महाराज यह कौन काज मत कीनो, जगत के डोबिवेको ऐसो परधान है ॥१८॥

स्त्रीरूपवर्णन—मात्रिक कवित्त[1].

बड़ी नीत लघु करत है, वाय सरत बदबोय भरी।
फोड़ा बहुत फुनगणी मंडित, सकल देह मनु रोग दरी ॥
शोणित हाड मांस मय मूरत, तापर रीझत घरी घरी।
ऐसी नारि निरखिकर केशव ? 'रसिकप्रिया' तुम कहा करी ॥१६॥

सवैया (मत्तगयन्द)

जो जग को सब देखत है तुम, ताहि विलोकिकें काहे न देखो।
जो जग को सब जानतु है, तुम ताहि जु जानो तो सूधो हैं लेखो ॥
जो जग में थिर ह्वै सुख मानत, सो सुख देवत कौन विशेखो ॥
है घट में प्रगटै तबही, जबही तुम आप निहारके पेखो ॥२०॥

कुपथ वर्णन कवित्त.

सोई तो कुपंथ जहां द्रव्य को न जाने भेद, सोई तो कुपंथ जहां लागि रहे परसै। सोई तो कुपथ जहां हिंसा में बखाने धर्म, सोई तो कुपंथ जहां कहै मोक्ष घरसैं ॥ सोई तो कुपंथ जो कुशीली[2] पशु देव कहै, सोई तो कुपंथ जो कुलिंगी पूजै डरसें। सोई तो कुपंथ जो सुपंथ पंथ जानैं नाहिं, बिना पंथ पाये मूढ कैसें मोक्ष दरसैं ॥२१॥

झूठो पंथ सोई जहां झूठे देव देव कहै, झूठ पंथ सोई जहां झूठे गुरु मानिये। झूठो पंथ सोई जहां ग्रन्थ सब झूंठे बचें, झूठो पंथ सोई जहां भ्रमको बखानिये ॥ झूठो पन्थ सोई जहां दया को न जाने भेद, झूठो पंथ सोई जहां हिंसा प्रमानिये। झूठे पंथ चले तब कैसें मोक्ष पावें अरु बिना मोक्ष पाये 'भैया।' सुखी कैसें जानिये ॥२२॥

---

(१) दत कथा में प्रसिद्ध कि केशवदास जी कवि, जो किसी स्त्री पर मोहित थे, उन्होंने उसके प्रसन्नार्थ 'रसिकप्रिया' नाम का ग्रंथ बनाया वह ग्रंथ समालोचनार्थ 'भैया' भगोतीदास जी के पास भेजा तो उसकी समालोचना में यह कवित्त रसिकप्रिया के पृष्ठ पर लिखकर के वापिस भेज दिया था।
(२) गौ आदिक कुशीली पशुओं यो देव मानते हैं।

सुपंथवर्णन सवैया.

पथ वहै सरवज्ञ जहां प्रभु, जीव अजीव के भेद बतैये ।
पथ वहै जु निग्रन्थ महामुनि, देखत रूप महासुख पैये ।
पथ वहै जहँ ग्रंथ विरोध न, आदि ओ अंतलों एक लखैये ।
पंथ वहै जहाँ जीव दया वृष, कर्म खपाइकें सिद्ध में जैये ॥२३॥
पथ वहै जहँ साधु चलै, सब चेतन की चरचा चित लैये ॥
पंथ वहै जहँ आ। विराजत लोक आलोक के ईश जु गैये ॥
पंथ वहै परमान चिदानद, जाके चलै भव भूल न ऐये ।
पंथ वहै जहँ मोक्ष को मारग, सूधे चले शिवलोक में जैये ॥२४॥

कवित्त.

केवली के ज्ञान में प्रमाण आन सब भासै, लोक ओ अलोकन की जेती कछु बात है। अतीत काल भई है अनागत में होयगी, वर्तमान समैकी विदित यों विख्यात है॥ चेतन अचेतन के भाव विद्यमान सबै, एक ही समैमे जो अनंत होत जात है। ऐसी कछु ज्ञान की विशुद्धता विशेष बनी, ताको धनी यहै हंस कैसे विललात है ॥२५॥

छयानवें हजार नार छिनक में दीनी छार, अरे मन ता निहार काहे तू डरत है। छहों खडकी विभूति छाडत न बेर कीन्ही, चमू चतुरंगनसों नेह न धरत है॥ नौ निधान आदि जे चउदह रतन त्याग, देह सेती नेह तोर वन विचरत है। ऐसी विभो त्यागत विलम्ब जिन कीन्हों नाहि, तेरे कहो केती निधि सोच क्यों करत है ॥२६॥

दोहा

यहै सुपंथ कुपंथ के, कवित पचीस प्रसिद्ध ॥
'भैया' पढत विवेकसों, लहिये आतमरिद्ध ॥२७॥

जिनधर्म पचीसिका

दोहा

प्रगट देव परमातमा, चिदानंद भगवान ।
वंदत हों तिनके चरन, नाय शीश धर ध्यान ॥१॥

छप्पय

धन्य धन्य जिनधर्म, जासुमें दया उभयविधि ।
धन्य धन्य जिनधर्म, जासुमहि लखै आपनिधि ॥
धन्य धन्य जिनधर्म, पंथशिवको दर सावै ।
धन्य धन्य जिनधर्म, जहाँ केवल पद पावै ॥

पुनि धन्य धन्य जिनधर्म यह, सुख अनंत जहाँ पाईये।
'भैया' त्रिकाल निजघटविषै, शुद्ध दृष्टि धर ध्याइये ॥२॥
जैन धर्म को मर्म, दृष्टि समकिततें सूझै।
जेनधर्म को मर्म, मूढ कैसें कर बूझै ॥
जैनधर्म को मर्म, जीव शिवगामी पावै।
जैनधर्म को मर्म, नाथ त्रिभुवन को गावै ॥
यह जैनधर्म जगमें प्रगट, दया दुहू जग पेखिये।
'भैया' सुविचक्षन भविक जन जैनधर्म निज लेखिये ॥३॥
जैनधर्म जयवंत, अंत जाको नहिं कबहू।
जैनधर्म जयवंत, संत प्राणी हैं अबहू ॥
जैनधर्म जयवंत, जंत सबको सुखकारी।
जैनधर्म जयवत, तंत सबको अधिकारी ॥
सत जैनधर्म जयवंत जग, प्रगट परम पद पेखिये।
'भैया' त्रिकाल जिनधर्मतें, सुख अनंत सब लेखिये ॥४॥
कल्पवृक्ष जिनधर्म, इच्छ सब पूरै मनकी।
चिंतामन जिनधर्म, चिंत सब टारै जनकी ॥
पारस सो जिनधर्म, करै लोहादिक कंचन।
काम धेनु जिनधर्म, कामना रहती रंच न ॥
जिनधर्म परमपद एक लख, अनंत जहां पाइये।
'भैया' त्रिकाल जिनधर्मतें, मुक्तिनाथ तोहि गाइये ॥५॥
उदित तेजपरताप, होत दिनदिन जयकारी।
तम अज्ञान विनाश, आश निज पर अधिकारी ॥
सबको शीतल करै, उष्ण क्रोधादिक टारै।
सदा अमिय वरषंत, शाँत रस अति विस्तारै ॥
'भैया' चकोर अंबुज भविक, सब प्राणिन को सुख करै।
सो जैनधर्म जग चंद सम, सेवत दुख संकट टरै ॥६॥
जैनधर्म विन ! जीत ह्वै है नहिं तेरी।
जैनधर्म विन जीव ! रीत किन करै घनेरी ॥
जैनधर्म विन जीव ! ज्ञान चारित कहुं नाहीं।
जैनधर्म विन जीव ! प्रकृति पर जाह न गाही ॥
इहि जैनधर्म विन जीव ! तुहै, दया उभय सूझै न दृग।
'भैया' निहार निज घट विषै, जैनधर्म सोई मोक्षमग ॥७॥

जैनधर्म विन जीव ! तोहि शिवपंथ न सूझै ।
जैनधर्म विन जीव । आप परको नहिं बूझै ॥
जैन धर्म विन जीव ! मर्म निज को नहिं पावें ।
जैनधर्म विन जीव ! कर्म गति दृष्टि न आवै ॥
इहि जैनधर्म विन जीव तुहै, केवलपद कितहू नहीं ।
अजहूं संभारि चिरकाल भयो चिदानद ! चेतो कहीं ॥८॥
जैनधर्म को जीव, आप परको सब जानै ।
जैनधर्म को जीव, बंध अरु मोक्ष प्रमानै ॥
जैनधर्म को जीव, स्यादवादी परत्यागी ।
जैनधर्म को जीव, होय निश्चय वैरागी ॥
इहि जैनधर्म को जीव जग, अजरामरपदवी लहै ।
"भैया' अनंत सुख भोगवै, आचारज इहविधि कहै ॥९॥

कवित्त

पापनके कूट जे अटुट भरे घट माहिं, होते चिरकालन के सवै निघटत है । लगे जो मिथ्यातभाव भूलिके सुभावनिज, तिन-हूके पटल प्रभात ज्यों फटत हैं ॥ अपनी सुदृष्टि होत प्रगटै प्रकाश ज्योत, तिहूं लोकमें उद्योत सत्य प्रगटत है । ऐसो जिनधर्म के प्रसादतें प्रकाश होय, अज हूं संभार भैया काहेको रटत है ।-१०॥

छप्पय

जो अरहत सुजीव, जीव सव सिद्ध भणिजे ।
आचारज पुन जीव, जीव उपझाय गणिज्जे ॥
साधु पुरुष सब जीव, जीव चेतन पद राजे ।
सो तेरे घट निकट, देख निज शुद्ध विराजै ॥
सब जीव द्रव्यनय एकसे, केवल ज्ञान स्वरूप मय ।
तस ध्यान करहु हो भव्यजन, जो पावहु पदवो अखय ॥११॥

सवैया

जो जिनदेवकी सेव करै जग, ताजिवदेवसो आप निहारै ।
जो शिवलोक बसै परमातम, तासम आतम शुद्ध विचारै ॥
आपमें आप लखै अपनो पद, पाप रु पुण्य दुहूं निरवारै ।
सो जिनदेवको सेवक है जिय, जो इहि भाति क्रिया करतारै ॥१२॥

कवित्त

एक जीवद्रव्य में अनंत गुण विद्यमान, एक एक गुण में अनंत

शक्ति देखिये। ज्ञान को निहारिये तो पार याको कहुं नाहिं, लोक ओ अलोक सब याही में विशेखिये ।। दर्शन को ओर जो विलोकिये तो वहै जोर, छहों द्रव्य भिन्न भिन्न विद्यमान पेखिये। चारित सों थिरता अनंत काल थिररूप, ऐसे ही अनंत गुण भैया सब लेखिये ।।१३।।

छप्पय

राग दोष अरु मोहि, नाहिं निजमाहिं निरक्खत।
दर्शन ज्ञान चरित्र, शुद्ध आतम रस चक्खत ।।
परद्रव्यनसों भिन्न, चिह्न चेतनपद मंडित ।
वेदत सिद्ध समान, शुद्ध निज रूप अखंडित।
सुख अनंत जिहि पदवसत, सो निहचै सम्यक महत ।
'भैया' सुविचक्षन भविक जन, श्रीजिनंद इहि विधि कहत ।।१४।।

व्यवहार सम्यक लक्षण छप्पय

छहों द्रव्य नव तत्त्व, भेद जाके सब जानै ।
दोष अठारह रहित, देव ताको परमानै ।।
संयम सहित सुसाधु, होप निरग्रंथ, निरागी ।
मति अविरोधी ग्रन्थ, ताहि मानै परत्यागी ।।
वरकेवल भाषित धर्मधर, गुण थानक बूझै मरम ।
'भैया' निहार व्यवहार यह, सम्यक लक्षण जिन धरम ।।१५।।

व्यवहार निश्चयनय वर्णन—मात्रिक कवित्त

जाके निहचै प्रगट भये गुण, सम्यक दर्शन आदि अपार।
ताके हिरदै गई विकलता, प्रगट रही करनी व्यवहार ।।
जहं व्यवहार होय तह निहचै, होय न होय उभय परकार।
जहं व्यवहार प्रगट नहिं दीखै, तहां न निश्चय गुण निरधार ।।१६।।

कवित्त

आंख देखै रूप जहां दौड़ तूही लागै तहां, सुनै जहां कान तहाँ तूही सुनै बात है। जीभ रस स्वाद धरै ताको तू विचार करै, नाक सूंघै बास तहाँ तू ही विरभात है।। फर्सकी जु आठ जाति तहां कहो कौन भांति, जहाँ तहां तेरो नाँव प्रगट विख्यात है। याही देह देवलमें केवलि स्वरूपदेव, ताकी कर सेव मन कहाँ दौड़े जात है ।।१७।।

जासों कहै घर तामै डर तौ कईक तोहि, सबन विसार हंस विषैरस लाग्यो है। गिरवे को डर अरू डर आगि पानी हूको, वस्तु राखबेको उर चौर डर जाग्यो है ।। पेट भरवे को डर रोग शोक महाडर, लोक

निकी लाज डर राजडर पाग्यो है। डर जमराजहू को डारि तूं निशंक भयो, जैसें मोह राजाने निवाज तोहि दाग्यो है ॥१८॥

रागी द्वेषी देख देव ताकी नित करें सेव, ऐसो है अबेव ताको कैसें पाप खपनो ?। राग रोग क्रीड़ा संग विषैंकी उठै तरंग, ताहि में अभग रैन दिना करै जपनो॥ आरति ओ रौद्र ध्यान दोऊ किये आगेवान, एतेपै चहै कल्यान दैके दृष्टि ढपनो। अरे मिथ्या चारी तैं विगारी मति गति दोऊ, हाथ ले कुल्हारी पांय मारत है अपनो ॥१९॥

छप्पय

जन्म जरा अरु मरन, पाप सताप विनासै।
रोग शोक दुख हरै, सर्व चिंता भय नासै॥
ऋद्धि सिद्धि अनुसरें विविध विद्या परकासै।
निजनिधि लहै प्रकाश, ज्ञान प्रभुता गुण भासै॥
अरु कर्म शत्रु सब जीतके, केवलि पद महिमा वरै।
सो जैनधर्म जयवत जग, जास हृदय ध्रुव संचरै ॥२०॥

जैनधर्म परसाद, जीव मिथ्यमति खडै।
जैनधर्म परसाद, प्रकृति उर सात विहडै॥
जैनधर्म परसाद, द्रव्यष्ट को पहिचानै।
जैनधर्म परसाद, आप परको ध्रुव ठानै॥
जैनधर्म परसाद लहि, निजस्वरूप अनुभव करै।
'भैया' अनत सुख भोगवै, जैन धर्म जो मन धरै ॥२१॥

जैनधर्म परसाद, जीव सब कर्म खपावै।
जैनधर्म परसाद, जीव पंचमि गति पावै॥
जैनधर्म परसाद, बहुरि भवमें नहिं आवै।
जैनधर्म परसाद, आप परब्रह्म कहावै॥
श्री जैनधर्म परसादतें, सुख अनंत विलसत ध्रुव।
सो जैनधर्म जयवत जग, भैया जिहं घट प्रगट हुव ॥२२॥

कवित्त

सुन मेरे मीत तू निचिंत ह्वैके कहा बैठो, तेरे पीछे काम शत्रु लागे अति जोर हैं। छिन छिन ज्ञान निधि लेत अति छीन तेरी, डारत अंधेरी भैया किये जात भोर हैं॥ जागवो, तो जाग अब कहत पुकारें तोहि, ज्ञान नैन खोल देख पास तेरे चोर हैं। फोरके शकति निज चोर को मरोर बांधि, तोसे बलवान आगें चोर ह्वैके को रहैं ॥२३॥

छप्पय.

चहुं गति में नर बड़े, बड़े तिनमें समदृष्टी।
समदृष्टीतैं बड़े, साधुपदवी उतकृष्टी॥
साधुनतैं पुन बड़े, नाथ उवझाय कहावें।
उवझायनतैं बड़े, पंच आचार बतावें॥
तिन आचार्यनतैं जिन बड़े, वीतराग तारन तरन।
तिन कह्यो जैनवृष जगतमें, भैया तस बंदत चरन॥२४॥

दोहा.

जैन धर्म सब धर्म पें, शोभत मुकुर समान।
जाके सेवत भव्यजन, पावत पद निर्वान॥२५॥
ज्यों दीपक संयोगतैं, वत्ती करै उदोत।
त्यों ध्यावत परमातमा, जिय परमातम होत॥२६॥
श्री जिनधर्म उदोत है, तिहू लोक परसिद्ध।
'भैया' जे सेवहि सदा, ते पावहि निजरिद्ध॥२७॥
सत्रहसैं पचासके, उत्तम भादव मास।
सुदि पूनम रचना कही, जैजिनधर्म प्रकाश॥२८॥

समुद्घात स्वरूप

दोहा.

चरन जुगल जिनदेवके, वंदत हों कर जोर॥
जिह प्रसाद निजसंपदा, लहै कर्म दल मोर॥१॥
समुद्घात जे सात हैं, तिनको कछु विस्तार॥
कहूं जिनागम शाखतें, जिय परदेश विचार॥२॥
उदयकषाय प्रचड ह्वै, निकसत जियपरदेश॥
दमि दुर्जनकी देहको, बहुरि न करत प्रवेश॥३॥
रोगादिक संयोगसों, औषध परसन काज॥
निकश जाय परदेश जो, आवत करै इलाज॥४॥
केवल ज्ञानी आतमा, लोक हद्दलों जाय॥
परदेशन पूरित करै, उदै न कछु बसाय॥५॥
मरन समय जिहं जीवको, समुदघात तिथ होय॥
प्रथम परस गति आयकें, बहुर जात है सोय॥६॥
षष्टम गुण थानीन को, उपजै कहुं संदेह॥
प्रश्न करत जिनदेवको, निकसत अद्भुत देह॥७॥

सुर मनुष्य कर वैक्रिया नाना ठौर रमाहिं।
सब थानक परदेशजिय, निकसै आवै जाहिं ॥८॥
तैजस वपु मुनिरायके, निकसत उभय प्रकार।
अशुभ शुभनके काजको, समुदघात तिहं बार ॥९॥
तंतू सब लागे रहैं, सुख दुख बेवे आप।
देहादिके के प्रसरते, परदेशनिमें व्याप ॥१०॥
'भैया' बात अगम्य है कहन सुननकी नाहिं।
जानत हैं जिन केवली, जे लच्छन जिय पाहिं।

सम्यक्त्व पचीसिका

सम्यक[1] आदि अनंत गुण, सहित सु आतम राम।
प्रगट भये जिह कर्म तज, तासि करों परणाम ॥१॥
उपशम वेदक क्षायकी, सम्यक तीन प्रकार।
ताही के नव भेद हैं, कहों ग्रंथ अनुसार ॥२॥

चोपाई (१५ मात्रा)

उपसम समकित कहिये सोय। सात प्रकृति उपसम जह होय।
दर्शन मोह तीन परकार। अनतानुबधीकी चार ॥३॥
क्षय उपसम के तीन प्रकार। तिनके नाम कहूं निरधार ॥
अनतानुबंधी चोकरी, जिह जिय शक्ति फोरके खारी ॥४॥
महा मिथ्यात मिश्र मिथ्यात। समै[2] प्रकृति उपशम विख्यात ॥
क्षय उपशम समकित तस नाम। अब दूजो बरनों इहिं ठाम ॥५॥
अनंतानु जे चार कषाय। महा मिथ्यात्व मिले क्षय जाय ॥
दोय प्रकृति उपशम ह्वै रहै। तासो क्षय उपसम पुनि कहै ॥६॥
क्षय षट जाहि प्रकृति जिह ठाम। समै प्रकृति उपसम तिह नाम ॥
ये क्षय उपशम तिहुं विधि कहे। अब वेदक बरनों सरदहै ॥७॥
जहां चार प्रकृति खप रहै। द्वै उपशम इक वेदक[3] लहै ॥
क्षय उपसम वेदक तिहं नाव। कहो ग्रन्थ में हैं बहु ठांव ॥८॥
पांच खपै उपसम ह्वै एक। समै प्रकृति वेदै गहि टेक ॥
दूजो भेद यहै सिरदार। अब तीजै को सुनहु विचार ॥९॥
छहों प्रकृति जामें क्षय जाहि। समै मिथ्यात्व मिटै तहं नाहि ॥
क्षायक वेदक लच्छन एए। कहे ग्रन्थ में नहिं संदेह ॥१०॥

---

१ सम्यक वा सम्यग्दर्शन २ सम्यकप्रकृति मिथ्यात्व ३ उदयरूप

उपशम बेदक कहिए तहां। छह उपशम इक वेदै जहां ॥
क्षायक समकित तब जिय लहै। सातों प्रकृति मूलसों दहै ॥११॥
जब लग ये प्रकृति नहि जाती। तब लग कहिये जीव मिथ्याती ॥
तिनके दूर कियतैं जीव। सम्यक दृष्टी कहे सदीव ॥१२॥
उनकी थिति पूरी जब होय। तब वे खिरैं फिरैं नहिं सोय ॥
खिरकें निजगुण परगट लहै। सो गुण काल अनन्तो रहै ॥१३॥
जे गुण प्रगट भये तज कर्म। ते सब जानो जियको धर्म ॥
जैसो प्रभु देखौ भगवान। तैसो है इनके सरधान ॥१४॥
सम्यकवंत जीव बैरागी। भावन सों सबही का त्यागी ॥
निव्रत पक्ष करै व्रत नाही। अप्रत्याख्यान उदै घटमाही ॥१५॥
मनवचकाय जोग त्रिक डोलै। लखै आपनी कर्म कलोलैं ॥
जितनी कर्म प्रकृति क्षय गई। तितनी कछु निर्मलता भई ॥१६॥
प्रकटी शक्ति ताहि पहिचानै। अरु जिनवर की आज्ञा मानै ॥
अक्षर एक विरोधै कोय। ताको भ्रमन बहुत जग होय ॥१७॥
तातैं व्रत पचखान न करैं। जिनवर का आज्ञासों डरैं ॥
लेकें व्रत जो भजै जीव। ते महा पापी कहे सदीव ॥१८॥
अप्रत्याख्यान जाय नहिं जहां। व्रत पचखान पलै नहिं तहां ॥
सम्यकदृष्टी परम सुजान। धरहिं शुद्ध अनुभव को ध्यान ॥१९॥
अनुभव में आतमरस लसै। आतमरस में शिव सुख बसै ॥
आतम ध्यान धरयो जिनदेव। तातैं भये मुक्ति स्वयमेव ॥२०॥
मुक्ति होन को बीज निहार। आतम ध्यान धरै अरिटार ॥
ज्यों ज्यों कर्म विलय को जाहिं। त्यों त्यों सुख प्रगटै घट माहि ॥२१॥
प्रत्याखयान अप्रत्याख्यान कर। चककूर चढ़हि गुण थान ॥
आगे महा ध्यान धर धीर। कर्म शत्रु जीतै बल वीर ॥२२॥
प्रगट करै निज केवल ज्ञान। सुख अनत विलसै तिह थान ॥
लोक अलोक सबहि झलकत। तातैं सब भाखै भगवंत ॥२३॥
चारों कर्म अघाती हार। तब वे पहुंचै मुक्ति मंझार ॥
काल अनंतहि ध्रुव ह्वै रहै। तास चरन भवि वदन कहै ॥२४॥
सुख अनत की नीव यह, सम्यक दर्शन जान ॥
यहीतें शिवपद मिलै 'भैया' लेहु पिछान ॥२५॥

सत्रह सै पंचासके, मारगसिर सित पक्ष ॥
तिथि लच्छन मुनिधर्म[1] की मृगपति[2] वार प्रत्यक्ष ॥२६॥

वैराग्य पचीसिका

दोहा.

रागादिक दूषण तजे, वैरागी जिनदेव ।
मन बच शीस नवयाकैं, कीजे तिनकी सेव ॥१॥
जगत मूल यह राग है, मुक्ति मूल वैराग ।
मूल दुहुन को यह कह्यो, जाग सकैं तो जाग ॥२॥
क्रोधमान माया धरत, लोभ सहित परिणाम ।
येही तेरे शत्रु हैं, समुझो आतमराम ॥३॥
इनही च्यारों शत्रु को, जो जीतैं जगमाहि ।
सो पावहि पथ मोक्ष को, यामें धोखो नाहि ॥४॥
जा लच्छीके काज तू, खोवत हे निजधर्म ।
सो लच्छी संग ना चलै, काहे भूलत भर्म ॥५॥
जा कुटुब के हेत तू, करत अनेक उपाय ।
सो कुटुब अगनी लगा, तोकों देत जराय ॥६॥
पोषत है जा देह को, जोग त्रिविधि के लाय ।
सो तोकों छिन एक में, दगा देय खिर जाय ॥७॥
लच्छी साथ न अनुसरै, देह चलै नहिं संग ।
काढ़ काढ़ सुजनहि करै, देख जगत के रंग ॥८॥
दुर्लभ दश दृष्टान्त सम, सो नरभव तुम पाय ।
विषय सुखन के कारने, सर्वस चले गमाय ॥९॥
जगहि फिरत कइ युग भये, सो कछु कियो विचार ।
चेतन अब चेतहू, नरभव लहि अतिसार ॥१०॥
ऐसे मनि विभ्रम भई, विषयनि लागत धाय ।
कै दिन कै छिन कै घरी, यह सुख थिर ठहराय ॥११॥
पीतो सुधा स्वभाव की, जी ! तो कहूं सुनाय ।
तू रीतो क्यों जातु है, बीतो नरभव जाय ॥१२॥
मिथ्या दृष्टि निकृष्ट अति, लखै न इष्ट अनिष्ट ।
भ्रष्ट करत है सिष्ट को, शुद्ध दृष्टि दै पिष्ट ॥१३॥

---

१. दशमी २. सोमवार

चेतन कर्म उपाधि तज, राग द्वेष को संग ॥
ज्यों प्रगटै परमातमा, शिव सुख होय अभंग ॥१४॥
ब्रह्म कहूं तो मैं नहीं, क्षत्री हू पुनि नांहि ॥
वैश्य शूद्र दोऊ नहीं, चिदानन्द हू मांहि ॥१५॥
जो देखै इहि नैनसों, सो सब विनस्यो जाय ॥
तासो जो अपनो कहै, सो मूरख शिरराय ॥१६॥
पुद्गल को जो रूप है, उपजै विनसै सोय ॥
जो अविनाशी आतमा, सो कछु और न होय ॥१७॥
देख अवस्था गर्भ की, कौन कौन दुख होंहि ॥
बहुर मगन संसार में, सौ लानत है तोहि ॥१८॥
अधो शीस ऊरध चरन, कौन अशुचि आहार ॥
थोरे दिन की बात यह, भूलि जात संसार ॥१९॥
अस्थि चर्म मलमूत्र में, रैन दिना को बास ॥
देखें दृष्टि घिनावनो, तऊ न होय उदास ॥२०॥
रोगादिक पीडित रहै, महा कष्ट जो होय ॥
तबहू मूरख जीव यह, धर्म न चिन्तै कोय ॥२१॥
मरन समय विललात है, कोऊ लेहु बचाय ॥
जानै ज्यों त्यों जीजिए, जोर न कछू बसाय ॥२२॥
फिर नरभव मिलिबो नही, किये हु कोट उपाय ॥
तातें बेगहि चेत हू, अहो जगत के राय ॥२३॥
भैयाकी यह वीनती, चेतन चितहिं विचार ॥
ज्ञानदर्श चारित्र में, आपो लेहु निहार ॥२४॥
एक सात पंचासको, संवत्सर सुखकार ॥
पक्ष शुक्ल तिथि धर्मकी, जै जै निशिपतिबार ॥२५॥

परमात्मा छत्तीसी

दोहा

परम देव परमातमा, परम ज्योति जगदीश ॥
परम भाव उर आनके, प्रणमत हों नमि शीस ॥१॥
एक जु चेतन द्रव्य है, तिनमें तीन प्रकार ॥
बहिरातम अन्तर तथा, परमातम पदसार ॥२॥
बहिरातम ताको कहै, लखै न ब्रह्म स्वरूप ॥
मग्न रहै परद्रव्यमें, मिथ्यावंत अनूप ॥३॥

अंतर आतम जीव सो, सम्यग्दृष्टी होय ॥
चौथे अरु पुनि बारवें, गुणथानक लों सोय ॥४॥
परमातम पद ब्रह्मको, प्रगटयो शुद्ध स्वभाय ॥
लोकालोक प्रमान सब, झलकै जिनमें आय ॥५॥
बहिरातमा स्वभाव तज, अतरातमा होय ॥
परमातम पद भजत है, परमातम ह्वै सोय ॥६॥
परमातम सो आतमा और न दूजो कोय ॥
परमातमको ध्यावते, यह परमातम होय ॥७॥
परमातम यह ब्रह्म है, परम ज्योति जगदीश ॥
परसों भिन्न निहारिये, जोई अलख सोई ईश ॥८॥
जो परमातम सिद्धमें, सो ही या तन माहि ॥
मोह मैल दृग लगि रह्यो, तातैं सूझै नाहि ॥९॥
मोह मैल रागादिको, जा छिन कीजे नाश ॥
ता छिन यह परमातमा, आपहि लहै प्रकाश ॥१०॥
आतम सो परमात्मा, परमातम सो सिद्ध ॥
बीचकी दुविधा मिटगई, प्रगट भई निज रिद्ध ॥११॥
मैं ही सिद्ध परमातमा, मैं ही आतमराम ॥
मैं ही ज्ञाता ज्ञेयको, चेतन मेरो नाम ॥१२॥
मैं अनत सुखको धनी, सुखमय मोर स्वभाय ॥
अविनाशी आनदमय, सो हों त्रिभुवन राय ॥१३॥
शुद्ध हमारो रूप है, शोभित सिद्ध समान ॥
गुण अनतकर सुजुगत, चिदानद भगवान ॥१४॥
जैसो शिव खेतहि बसै, तैसो या तनमाहि ॥
निश्चय दृष्टि निहारतें, फेर रच कहुं नाहि ॥१५॥
कर्मन के सयोग तें, भये तीन परकर ॥
एक आतमा द्रव्य को, कर्म नचावन हार ॥१६॥
कर्म सघाती आदिके, जोर न कछू बसाय ॥
पाई कला विवेककी, राग द्वेष विन जाय ॥१७॥
कर्मन की जर राग है, राग जरे जर जाय ॥
प्रगट होत परमातमा, भैया सुगम उपाय ॥१८॥
काहे को भटकत फिरै, सिद्ध होन के काज ॥
राग द्वेष को त्यागदे, 'भैया, सुगम इलाज ॥१९॥

परमातम पदको धनी, रंक भयो विललाय ॥
राग द्वेषकी प्रीतिसों, जनम अकारथ जाय ॥२०॥
राग द्वेषकी प्रीति तुम, भूलि करो जिन रंच ॥
परमातम पद ढांकके, तुमहिं किये तिरजंच ॥२१॥
जप तप संयम सब भलो, राग द्वेष जो नाहिं ॥
राग द्वेष के जागते, ये सब सोये जांहिं ॥२२॥
राग द्वेषके नाशतें, परमातम परकाश ॥
राग द्वेष के भासतें, परमातम पद नाश ॥२३॥
जो परमातम पद चहै, तो तू राग निवार ॥
देख सयोगी स्वामिको, अपने हिये विचार ॥२४॥
लाख बातकी बात यह, तोकों दई बताय ॥
जो परमातम पद चहैं, राग द्वेष तज भाय ॥२५॥
राग द्वेषके त्याग विन, परमातम पद नाहिं ॥
कोटिकोटि जपतप करो, सबहि अकारथ जाहिं ॥२६॥
दोष आतमाको यहै, राग द्वेष के संग ॥
जैसे पास मजीठ के, वस्त्र और ही रंग ॥२७॥
तैंसें आतम द्रव्य को, राग द्वेषके पास ॥
कर्म रंग लागत रहै, कैंसें लहै प्रकाश ॥२८॥
इन कर्मनको जीतिबो, कठिन बात है मीत।
जड़ खोदे बिन नहिं मिटै, दुष्टजाति विपरीत ॥२९॥
लल्लोपत्तो[1] के किये, ये मिटवे के नाहिं ॥
ध्यान अग्निपरकाश कें, होम देहु तिहि माहिं ॥३०॥
ज्यों दारूके गजको[2], नर नहिं सकै उठाय ॥
तनक आग सयोगतैं, छिन इकमें उडि जाय ॥३१॥
देह सहित परमातमा, यह अचरजकी बात ॥
राग द्वेष के त्यागतैं, कर्म शक्ति जर जात ॥३२॥
परमातम के भेद द्वय, निकल सकल परमान ॥
सुख अनंतमें एकसे, कहिवे को द्वय थान ॥३३॥
भैया वह परमातमा, सो ही तुममें आहि ॥
अपनी शक्ति सम्हारिके, लखो वेग ही ताहि ॥३४॥

(१) टालटूल (२) ढेरको.

राग द्वेषको त्यागके, धर परमातम ध्यान ॥
ज्यों पावे सुख सपदा, भैया इम कल्यान ॥३५॥
सबत विक्रम भूपको, सत्रह से पंचास ॥
मार्गशीर्ष रचना करी, प्रथम पक्ष दुति जास ॥३६॥

उपादाननिमित्त का संवाद

दोहा

पाद प्रणमि जिनदेव के, एक उक्ति उपजाय ॥
उपादान अरु निमित्तको, कहुं संवाद बनाय ॥१॥
पूछत है कोऊ तहां, उपादान किह नाम ॥
कहो निमित्त कहिये कहा, कबके हैं इह ठाम ॥२॥
उपादान निजशक्ति है, जियको मूल स्वभाव ॥
है निमित्त परयोगतें, बन्यो अनादि बनाव ॥३॥
निमित कहै मोको सबे, जानत हैं जग लोय ॥
तेरो नाव न जानहीं, उपादान को होय ॥४॥
उपादान कहै रे निमित्त, तू कहा करै गुमान ॥
मोकों जाने जीव वे, जो हैं सम्यकवान ॥५॥
कहै जीव सब जगतके, जो निमित्त सोइ होय ॥
उपादानकी बातको, पूछै नाहीं कोय ॥६॥
उपादान विन निमित तू, कर न सकै इक काज ॥
कहा भयो जग ना लखै, जानत हैं जिनराज ॥७॥
देव जिनेश्वर गुरु यती, अरु जिन आगम सार ॥
इहि निमित्ततें जीव सब, पावत हैं भवपार ॥८॥
यह निमित्त इह जीवको, मिल्यो अनंती बार ॥
उपादान पलटयो नहीं, तौ भटक्यो संसार ॥९॥
कै केवली कै साधु कै, निकट भव्य जो होय ॥
सो क्षायक सम्यक लहै, यह निमित्तबल जोय ॥१०॥
केवलि अरु मुनिराजके, पास रहैं बहु लोय ॥
पैं जाको सुलटयो धनी, क्षायक ताको होय ॥११॥
हिंसादिक पापन किये, जीव नर्क में जाहिं ॥
जो निमित्त नहिं कामको, तो इम काहे कहाहिं ॥१२॥
हिंसा में उपयोग जिहं, रहै ब्रह्मके राच ॥
तेई नर्कमें जात हैं, मुनि नहिं जाहिं कदाच ॥१३॥

दया दान पूजा किये, जीव सुखी जग होय ॥
जो निमित्त झूठो कहो, यह क्यों मानें लोय ॥१४॥
दया दान पूजा भली, जगतमाहिं सुखकार ॥
जहँ अनुभवको आचरन, तहँ यह बंध विचार ॥१५॥
यह तो बात प्रसिद्ध है, शोच देख उरमाहिं ॥
नरदेही के निमितविन, जिय क्यों मुक्ति न जाहि ॥१६॥
देह पींजरा जीव को, रोकें शिवपर जात ॥
उपादानकी शक्तिसों, मुक्ति होत रे भ्रात ॥१७॥
उपादान सब जीवपें, रोकन हारो कौन ।
जाते क्यों नहिं मुक्ति में, विन निमित्त के होन ॥१८॥
उपादान सु अनादिको, उलट रह्यो जगमाहिं ॥
सुलटत ही सूधे चले, सिद्ध लोकको जाहिं ॥१९॥
कहुं अनादि विन निमितही, उलट रह्यो उपयोग ॥
ऐसी बात न संभवें, उपादान तुम जोग ॥२०॥
उपादान कहै रे निमित, हम पै कही न जाय ॥
ऐसे ही जिन केवली, देखें त्रिभुवन राय ॥२१॥
जो देख्यो भगवान ने, सोही सांचो आहि ॥
हम तुम संग अनादि के, बली कहोगे काहि ॥२२॥
उपादान कहै वह बली, जाको नाश न होय ॥
जो उपजत विनशत रहै, बली कहांतें सोय ॥२३॥
उपादान तुम जोर हो, तो क्यों लेत अहार ॥
परनिमित्तके योगसों, जीवत सब संसार ॥२४॥
जो अहारके जोगसों, जीवत है जगमाहिं ॥
तो वासी संसारके, मरते कोऊ नाहिं ॥२५॥
सूर सोम मणि अगिनके, निमित लखें ये नैन ॥
अंधकार में कित गयो, उपादान दृग दैन ॥२६॥
सूर सोम मणि अग्नि जो, करें अनेक प्रकाश ॥
नैन शक्ति विन ना लखें, अन्धकार सम भास ॥२७॥
कहै निमित्त वे जीव को ? मो विन जगके माहिं ॥
सबै हमारे वश परे, हम विन मुक्ति न जाहिं ॥२८॥
उपादान कहै रे निमित्त, ऐसे बोल न बोल ॥
ताको तज निज भजत हैं, तेही करें किलोल ॥२९॥

कहै निमित हमको तजे, ते कैसे शिव जात ॥
पंचमहाव्रत प्रगट हैं, और हु क्रिया विख्यात ॥३०॥
पंचमहाव्रत जोग त्रय, और सकल व्यवहार ॥
परको निमित्त खपायके, तब पहुंचें भवपार ॥३१॥
कहै निमित्त जग मैं बड़ो, मेनौं बड़ो न कोय ॥
तीन लोकके नाथ सब, मो प्रसादतैं होय ॥३२॥
उपादान कहैं तू कहा, चहुं गति में ले जाय ॥
तो प्रसादतैं जीव सब, दुखी होहिं रे भाय ॥३३॥
कहै निमित्त जो दुख सहै, सो तुम हमहि लगाय ॥
सुखी कौन तैं होत है, ताको देहु बताय ॥३४॥
जा सुखको तू सुख कहै, सो सुख तो सुख नाहि ॥
ये सुख, दुखके मूल है, सुख अविनाशी माहिं ॥३५॥
अविनाशी घट घट बसे, सुख क्यों विलसत नाहि ? ॥
शुभ निमित्तके योगविन, परे परे विललाहि ॥३६॥
शुभ निमित्त इह जीवको, मिल्यो कई भवसार ॥
पै इक सम्यक दर्श विन, भटकत फिरयो गंवार ॥३७॥
सम्यक दर्श भये कहा, त्वरित मुकति में जाहि ॥
आगें ध्यान निमित्त हैं, ते शिवको पहुंचाहि ॥३८॥
छोर ध्यानकी धारना, मोर योग की रीति ॥
तोर कर्म के जालको, जोर लई शिव प्रीति ॥३९॥
तब निमित्त हारयो तहां, अब नहिं जोर बसाय ॥
उपादान शिव लोकमें, पहुंच्यो कर्म खपाय ॥४०॥
उपादान जीत्यो तहां, निजबल कर परकास ॥
सुख अनत ध्रुव भोगवै, अत न बरन्यो तास ॥४१॥
उपादान अरु निमित्त ये, सब जीवन पै वीर ॥
जो निजशक्ति सभारहीं, सो पहुंचें भवतीर ॥४२॥
भैया महिमा ब्रह्मकी, कैसे बरनी जाय ॥
बचन अगोचर वस्तु है, कहिवो बचन बनाय ॥४३॥
उपादान अरु निमित को, सरस बन्यो संवाद ॥
समदृष्टी को सुगम है, मूरख को बकवाद ॥४४॥
जो जानै गुण ब्रह्मके, सो जानै यह भेद ॥
साख जिनागमसों मिलै, तो मत कीज्यो खेद ॥४५॥

नगर आगरो अग्र है, जैनी जनको बास ॥
तिहं थानक रचनाकरी, ,'भैया' स्वमति प्रकाश ॥४६॥
सवत विक्रम भूप को, सत्रहसै पंचास ॥
फाल्गुण पहिले पक्षमें, दशों दिशा परकाश ॥४७॥

कर्त्ता अकर्ता पचीसी

दोहा

कर्मनको कर्त्ता नहीं, धरता सुद्ध सुभाय ।
ता ईश्वर के चरन को, बंदों सीस नवाय ॥१॥
जो ईश्वर करता कहै, भुक्ता कहिये कौन ।
जो करता सो भोगता, यहै न्यायको मौन ॥२॥
दुहूं दोषतें रहित है, ईश्वर ताको नाम ।
मनवचशीस नवाइकें, करूं ताहि परणाम ॥३॥
कर्मनको करता वहै, जापैं ज्ञान न होय ।
ईश्वर ज्ञानसमह है, किम कर्त्ता ह्वै सोय ॥४॥
ज्ञानवत ज्ञानहिं करै, अज्ञानी अज्ञान ।
जो ज्ञाता कर्त्ता कहै, लगै दोष असमान ॥५॥
ज्ञानी पै जड़ता कहा, कर्त्ता ताको होय ।
पंडित हियें विचारकें, उत्तर दीजे सोय ॥६॥
अज्ञानी जड़तामयी, करै अज्ञान निशंक ।
कर्त्ता भुगता जीव यह, यों भाखै भगवंत ॥७॥
ईश्वर की जिय जात है, ज्ञानी तथा अज्ञान ।
जो इह नै कर्त्ता कहो, तौ ह्वै बात प्रमान ॥८॥
अज्ञानी कर्त्ता कहै, तौ सब बनै बनाव ।
ज्ञानी ह्वै जड़ता करै, यह तौ बने न न्याव ॥९॥
ज्ञानी करता ज्ञानको, करै न कहुं अज्ञान ।
अज्ञानी जड़ता करैं, यह तो बात प्रमान ॥१०॥
जो कर्त्ता जगदीश है, पुण्य पाप किहँ होय ।
सुख दुख काको दीजिए, न्याय करहु बुध लोय ॥११॥
नरकन में जिय डारिये, पकर पकर कें बांह ।
जो ईश्वर करता कहो, तिनको कहा गुनाह ॥१२॥
ईश्वर की आज्ञा बिना, करत न कोऊ काम ।
हिंसादिक उपदेश को, कर्ता कहिये राम ॥१३॥

कर्त्ता अपने कर्म को, अज्ञानी निर्धार ।
दोष देत जगदीश को, यह मिथ्या आचार ॥१४॥
ईश्वर तौ निर्दोष है करता भुक्ता नाहिं ।
ईश्वर को कर्त्ता कहै, ते मूरख जगमाहिं ॥१५॥
ईश्वर निर्मल मुकुरवत, तीनलोक आभास ।
सुख सत्ता चैतन्यमय, निश्चय ज्ञान विलास ॥१६॥
जाके गुन तामें बसै, नहीं और में होय ॥
सूधी दृष्टि निहारतें, दोष न लागे कोय ॥१७॥
वीतरागवानी विमल, दोषरहित तिहुंकाल ।
ताहि लखै नहि मूढ़ जन, झूठे गुरुके बाल ॥१८॥
गुरु अंधे शिष्य अंधकी, लखै न बाट कुबाट ।
विना चक्षु भटकत फिरैं, खुलै न हिये कपाट ॥१९॥
जोलों मिथ्यादृष्टि है, तोलों कर्त्ता होय ।
सो हू भावित कर्मको, दर्वित करै न कोय ॥२०॥
दर्व कर्म पुद्गल मयी, कर्त्ता पुद्गल तास ।
ज्ञानदृष्टिके होत ही, सूझै सब परकाश ॥२१॥
जोलों जीव न जान ही, छहों कायके वीर ।
तौलों रक्षा कौनकी, कर है साहस धीर ॥२२॥
जानत है सब जीवको, मानत आप समान ।
रक्षा यातें करत है, सबमें दरसन ज्ञान ॥२३॥
अपने अपने सहज[1] के, कर्त्ता है सब दर्व ।
यहै धर्मको मूल है, समझ लेहु जिय सर्व ॥२४॥
'भैया' बात अपार है, कहै कहालों कोय ।
थोरे ही में समझियो, ज्ञानवंत जो होय ॥२५॥
सत्रहसे इक्यावनै, पोष शुक्ल तिथि वार[2] ।
जो ईश्वरके गुण लखै, सो पावे भववार ॥२६॥

मनबत्तीसी

दोहा.

दर्शन ज्ञान चारित्र जिहं, सुख अनंत प्रतिभास ॥
वंदत हों तिहं देवको, मन धर परम हुलास ॥१॥

(१) स्वभावके (२) सप्तमी

मनसों वंदन कीजिये, मनसों धरिये ध्यान ॥
मनसों आतम तत्वको, लखिये सिद्ध समान ॥२॥
मन खोजत है ब्रह्म को, मन सब करै विचार ॥
मनविन आतम तत्वको, करै कौन निरधार ॥३॥
मनसम खोजी जगत में, और दूसरो कौन ॥
खोज गहै शिवनाथ को, लहै सुखन को भौन ॥४॥
जो मन सुलटै आपको, तो सूझै सब सांच ॥
जो उलटै संसार को, तौ मन सूझै कांच ॥५॥
सत असत्य अनुभव उभय, मन के चार प्रकार ॥
दोय झुकै संसार को, द्वै पहुचावै पार ॥६॥
जो मन लागै ब्रह्म को, तो सुख होय अपार ॥
जो भटकै भ्रम भाव में, तो दुख पार न वार ॥७॥
मनसो बली न दूसरो, देख्यो इहि संसार ॥
तीन लोक में फिरत ही, जातन लागै बार ॥८॥
मन दासन को दास है, मन भूपन को भूप ॥
मन सब बातनि योग्य है, मन की कथा अनूप ॥९॥
मन राजा की सैन सब, इन्द्रन से उमराव ॥
रात दिना दौरत फिरै, करै अनेक अन्याव ॥१०॥
इन्द्रिय से उमराव जिहं, विषय देश विचरंत ॥
भैया तिह मन भूप को, को जीतै विन संत ॥११॥
मन चंचल मन चपल अति, मन बहु कर्म कमाय ॥
मन जीते विन आतमा, मुक्ति कहो किम थाय ॥१२॥
मन सो जोधा जगत में, और दूसरो नाहिं ॥
ताहि पछारै सो सुभट, जीत लहै जग माहिं ॥१३॥
मन इन्द्रिन को भूप है, ताहि करै जो जेर ॥
सो सुख पावे मुक्ति के, यामें कछू न फेर ॥१४॥
जब मन मूद्यो ध्यान में, इन्द्रिय भई निराश ॥
तब इह आतम ब्रह्म ने, कीने निज परकाश ॥१५॥
मनसो मूरख जगत में, दूजो कौन कहाय ॥
सुख समुद्र को छाड़के, विष के बन में जाय ॥१६॥
विष भक्षनतें दुख बढे, जानै सब संसार ॥
तबहू मन समझै नहीं, विषयन सेती प्यार ॥१७॥

छहों खंड के भूप सब, जीत किये निजदास ॥
जो मन एक न जीतियो, सहै नर्क दुख बास ॥१८॥
छांड तनकसी झूंपरी, और लंगोटी साज ॥
सुख अनंत विलसंत है, मन जीतै मुनिराज ॥१९॥
कोटि सताइस अपछरा, बत्तिस लक्ष विमान ॥
मन जीते विन इन्द्र हू, सहै गर्भ दुख आन ॥२०॥
छांड धरहि बन में बसै, मन जीतन के काज ॥
तौ देखो मुनिराज जू, विलसत शिवपुर राज ॥२१॥
अरि जीतन को जोर है, मन जीतन को खाम ॥
देख त्रिखंडी भूप को, परत नर्क के धाम ॥२२॥
मन जीतै जे जगत में, ते सुख लहै अनंत ॥
यह तौ बात प्रसिद्ध है, देख्यो श्री भगवंत ॥२३॥
देख बडे आरम्भसों, चक्रवर्ती जग माहिं ॥
फेरत ही मन एक को, चले मुक्ति में जांहि ॥२४॥
बाहिज परिगह रंच नहि, मन में धरै विकार ॥
ताँदुल मच्छ निहारिये, पडै नरक निरधार ॥२५॥
भावनही तै बंध है, भावनही तै मुक्ति ॥
जो जानै गति भाव की, सो जानै यह युक्ति ॥२६॥
परिग्रह कारन मोह को, इम भाख्यो भगवान ॥
जिहं जिय मोह निवारियो, तिहिं पायो कल्यान ॥२७॥

अरिल्ल.

कहा भयो कहु फिरे तीर्थ अडसट्ठका ॥
कहा होय तन दहे, रैन दिन कट्ठका ॥
कहा होय नित रटै राम मुख पट्ठका ॥
जो बस नाही तोहि पसेरी[1] अट्ठका ॥२८॥
कहा मुँड़ाये मूड बसे कहा मट्ठका ॥
कहा नहाये गंग नदी के तट्टका ॥
कहा कथा के सुने बचन के पट्ठका ॥
जो वस नाही तोहि पसेरी अट्ठका ॥२९॥

चौपाई १६ मात्रा.

कहा कहों जिय की जड़ताई। मोपैं कछु बरनी नहि जाई ॥
आरज खंड मनुष्यभव पायो। सो विषयन संग खेल गमायो ।३०।

१ आठ पसेरीका मन

आगें कहो कौन गति जैहो । ऐसे जनम बहुर कहां पैहो ।।
अरे तू मूरख चेत सवेरे । आवत काल छिनहि छिन नेरे ।।३१
जबलों जमकी फौज न आवै । तबलों जो मन को समुझावें ।।
आतम तत्व सिद्धसम राजै । ताहि विलोक मर्मभय भाजै ।।३२
बहुत बात कहिये कहु केती । कारज एक ब्रह्म ही सेती ।।
ब्रह्म लखै सो ही सुख पावै । भैया सो परब्रह्म कहावै ।३३

चौपाई १५ मात्रा

नगर आगरे जैनी बसै । गुण मणिरिद्ध वृद्धि कर लसै ।।
तिह थानक मन ब्रह्म प्रकाश । रचना कही 'भागोतीदास ।।३४

फुटकर विषय

कवित्त.

तेरो ही स्वभाव चिनमूरति विराजतु है, तेरो ही स्वभाव सुख साग में लहिये । तेरो ही स्वभाव ज्ञान दरसनहू राजतु है, तेरो ही स्वभा ध्रुव चारित में कहिये ।। तेरो ही स्वभाव अविनाशी सदा दीसतु तेरो ही स्वभाव परभाव में न गहिये । तेरो ही स्वभाव सब आन ल ब्रह्म माहिं यातैं तोहि जगत को ईश सरदहिये ।।१।।

छप्पय छंद

शीश गर्व नहि नम्यो, कान नहिं सुनै बैन सत ।।
नैन न निरखे साधु, वैनतैं कहे न शिवपति ।।
करतें दान न दीन, हृदय कछु दया न कीनी ।।
पेट भरयो करि पाप, पीठ परतिय नहि दीनी ।।
चरन चले नहि तीर्थ कहूं, तिहि शरीर कहा कीजिये ।।
इमि कहै श्याल रे श्वान यह ! निन्द निकृष्ट न लीजिये ।।२।।

सवैया (मात्रिक).

मन वचन काय योग तीनहुंसों, सब जीवन के रक्षक होय ।।
झुठे वचन बोलै कबहू, विना दिये कछु लेय न जोय ।।
शीलव्रतहिं पालै निरदूषन, दुविध परिग्रह रंच न कोय ।।
पंच महाव्रत ये जिन भाषित, इहि मग चलै साधु है सोय ।।३।।

छप्पय.

वीतराग के बिम्ब सेय, समदृष्टी करई ।।
अष्टक द्रव्य चढ़ाय, थाल भरि आगे धरई ।।
पूजा पाठ प्रमान, जाप जप ध्यानहि ध्यावै ।।

अचल अंग थिरभाव, शुद्ध आतम लौ लावै ॥
मंजार निरखि नैवेद्य को, मर्कट फल इच्छा धरहि ।
तंदुलहिं चिरा पुष्पहिं भमर, एक थाल भुंजन करहिं ॥४॥

छप्पय

जहां जपहिं नवकार, तहाँ अघ कैसे आवै ।
जहां जपहिं नवकार, तहाँ व्यंतर भज जावें ॥
जहां जपहिं नवकार, तहां सुख संपति होई ।
जहां जपहिं नवकार, तहां दुख रहै न कोई ॥
नवकार जपत नव विधि मिलै, सुख समूह आवै सरब ।
सो महामंत्र शुभ ध्यान सों, 'भैया' नित जपवो करब ॥५॥

दोहा.

सीमंधर स्वामी प्रमुख, वर्तमान जिनदेव ॥
मन वच शीस नवाय के, कीजे तिनकी सेव ॥६॥
महिमा केवल ज्ञान की, जानत है श्रुतज्ञान ॥
तातें दुहू बराबरी, भाषे श्री भगवान ॥७॥
केवल ज्ञान स्वरूप मय, राजत श्री जिनराय ॥
वंदत हों तिनके चरन मन वच शीस नवाय ॥८॥
कर्मन के वस जीव सब, बसत जगत के माहिं ॥
जे कर्मन को वस किये, ते सब शिवपुर जाहिं ॥९॥

श्री परमानन्दाय नमः

परमानन्द-स्तोत्र

परमानन्दसंयुक्तं, निर्विकारं निरामयम् ।
ध्यान-हीना न पश्यन्ति, निजदेहे व्यवस्थितम् ॥१॥

अर्थ—परमानन्द युक्त रागादिक विकारों से रहित, ज्वरादिक रोगों से मुक्त और निश्चय नय से अपने शरीर में ही विराजमान परमात्मा को ध्यानहीन पुरुष नही देख सकते ।

अनन्तसुख-सम्पन्नं, ज्ञानामृत-पयोधरम् ।
अनन्तवीर्य-सम्पन्नं, दर्शनं परमात्मनः ॥२॥

अर्थ—अनन्तसुख विशिष्ट, ज्ञानरूपी अमृत से भरे हुए समुद्र के समान और अनन्त बल युक्त परमात्मा का स्वरूप समझना चाहिए ।

निर्विकारं निराबाधं, सर्वसंग विवर्जितम् ।
परमानन्द-सम्पन्नं, शुद्धचैतन्यलक्षणम् ॥३॥

अर्थ—रागादिक विचारों से रहित, अनेक प्रकार की सांसारिक बाधाओं से मुक्त, सम्पूर्ण परिग्रहों से शून्य, परमानन्द विशिष्ट शुद्ध केवल ज्ञान रूप चैतन्य ही परमात्मा का लक्षण मानना चाहिए।

उत्तमा स्वात्मचिन्ता स्यान्मोहचिन्ता च मध्यमा।
अधमा कामचिन्ता स्यात् परचिन्ताऽधमाधमा ॥४॥

अर्थ—अपनी आत्मा के उद्धार की चिन्ता करना उत्तम चिन्ता है, प्रकृष्ठमोह अर्थात् शुभराग वश दूसरे जीवों का भला करने की चिन्ता करना मध्यम चिन्ता है, काम भोग की चिन्ता करना अधम चिन्ता है और दूसरों का अहित करने का विचार करना अधम से भी अधम चिन्ता है।

निर्विकल्प-समुत्पन्नं ज्ञानमेव सुधारसम।
विवेकमञ्जलिं कृत्वा तत्पिबन्ति तपस्विनः ॥५॥

अर्थ—आत्मा के असली स्वरूप को बिगाड़ने वाले अनेक प्रकार के संकल्प-विकल्पों को नाश करने से जो ज्ञानरूपी अमृत उत्पन्न होता है उसको तपस्वी महात्मा ही विवेक रूपी अंजलि से पीते हैं।

सदानन्दमयं जीवं यो जानाति स पण्डितः।
स सेवते निजात्मानं परमानन्दकारणम् ॥६॥

अर्थ—जो पुरुष निश्चय नय से सदा ही आत्मा में रहने वाली परमानन्द दशा को जानता है वही वास्तव में पण्डित है और वही पुरुष अपनी आत्मा को परमानन्द का कारण समझकर वास्तव में उसकी सेवा करनी जानता है।

नलिन्यां च यथा नीरं, भिन्नं तिष्ठति सर्वदा।
अयमात्मा स्वभावेन, देहे तिष्ठति निर्मलः ॥७॥

अर्थ—जैसे कमलपत्र के ऊपर पानी की बूंद कमल से हमेशा भिन्न रहती है उसी प्रकार यह निर्मल आत्मा शरीर के भीतर रहकर भी स्वभाव की अपेक्षा शरीर से सदा भिन्न ही रहता है अथवा कार्माण-शरीर के भीतर रहकर भी कार्माणशरीरजन्य रागादि मलों से सदा अलिप्त रहता है।

द्रव्यकर्ममलैर्मुक्तं भाव कर्म विवर्जितम्।
नोकर्म-रहितं विद्धि, निश्चयेन चिदात्मनः ॥८॥

अर्थ—इस चैतन्यरूप आत्मा का स्वरूप निश्चय करके ज्ञानावरणादि रूप द्रव्य कर्मों से शून्य, रागादिरूप भाव कर्मो से रहित

व औदारिक-वैक्रियिक आदि शरीर रूप नोकर्मों से रहित जानना चाहिये।

आनन्दं ब्रह्मणो रूपं, निजदेहे व्यवस्थितम्।
ध्यान-हीना न पश्यन्ति,जात्यन्धा इव भास्करम् ॥९॥

अर्थ—इस परमब्रह्मरूप परमात्मा के आनन्दमय स्वरूप को शरीर के भीतर मौजूद होते हुए भी ध्यान-हीन पुरुष नहीं जानते। जैसे जन्माध पुरुष सूर्य को नहीं जानता है।

तद्ध्यानं क्रियते भव्यं मनो येन विलीयते।
तत्क्षणं दृश्यते शुद्धं चिच्चमत्कारलक्षणम् ॥१०॥

अर्थ—मोक्ष के इच्छुक भव्य जीवों को वही ध्यान करना चाहिए जिसके द्वारा यह चचल मन स्थिर होकर परमात्मस्वरूप में विशेष रूप से लीन हो जावे, क्योंकि जिस समय इस प्रकार का ध्यान होता है, उसी समय चैतन्य चमत्कार स्वरूप का साक्षात् दर्शन होता है।

ये ध्यानशीला मुनय प्रधानास्ते दुःखहीना नियमाद्भवन्ति।
सम्प्राप्य शीघ्रं परमात्मतत्त्वं, व्रजन्ति मोक्षं क्षणमेकमेव ॥११॥

अर्थ -जिन मुनियों का उत्तम ध्यान करना ही स्वभाव है वे मुनि पुगव कुछ काल में ही नियम से सर्व दुःखों से छूटकर अर्हंत स्वरूप परमात्मपद को प्राप्त हो जाते हैं और बाद में अयोगकेवली होकर क्षणमात्र में अष्टकर्म रहित अविनश्वर मोक्षधाम में सदा के लिए जा विराजमान होते हैं।

आनन्दरूपं परमात्मतत्त्वं, समस्त-संकल्प-विकल्प-मुक्तम्।
स्वभावलीना निवसंति नित्यं जानाति योगी स्वयमेव तत्त्वम् ॥१२॥

अर्थ—निज स्वभाव में लीन हुए मुनि ही परमात्मा के समस्त संकल्पों से रहित परमानन्दमय स्वरूप में निरन्तर तन्मय रहते हैं और इस प्रकार के योगी महात्मा ही आगे कहे जाने वाले परमात्म स्वरूप को स्वयं जानते हैं।

चिदानन्दमयं शुद्धं निराकारं निरामयम्।
अनन्त-सुख-सम्पन्न सर्वसग विवर्जितम् ॥१३॥
लोकमात्र-प्रमाणोऽय निश्चयेन न सशयः।
व्यवहारे तनूमात्रः कथितः परमेश्वरैः ॥१४॥

अर्थ—श्री सर्वज्ञदेव ने परमात्मा का का स्वरूप चिदानन्दमय

शुद्ध रूप, रस, गंध, स्पर्शमय आकार से रहित अनेक प्रकार के रोगों से सर्वथा शून्य, अनन्तसुख विशिष्ट व सर्व परिग्रह रहित बताया है और निश्चय नय से आत्मा वा परमात्मा का आकार लोकाकाश के समान असंख्यात प्रदेशी तथा व्यवहार नय से कर्मोदय से प्राप्त छोटे व बड़े शरीर के बराबर बताया है।

यत्क्षणं दृश्यते शुद्ध तत्क्षणं गत-विभ्रमः।
स्वस्थ-चित्तः स्थिरीभूत्वा निर्विकल्पसमाधिना ॥१५॥

अर्थ—इस प्रकार ऊपर कहे हुए परमात्मा के स्वरूप को योगी पुरुष जिस समय निर्विकल्पसमाधि के द्वारा (ध्याताध्येय-ध्यान की अभिन्न रूप एक अवस्था हो जाने से) जान लेता है उस समय उस योगी का चित्त रागादि जन्य आकुलता से रहित स्थिर होता है और उसकी आत्मा को अनादि काल से भ्रम में डालने वाले अज्ञानरूपी पिशाच का नाश हो जाता है। उस समय वह निश्चल योगी ही आगे कहे जाने वाले विशेषणों से विशिष्ट हो जाता है।

स एव परमं ब्रह्म, स एव जिनपुंगवः।
स एव परम तत्त्व, स एव परमो गुरुः ॥१६॥

स एव परमं ज्योतिः, स एव परमं तपः।
स एव परम ध्यानं, स एव परमात्मनः ॥१७॥

स एव सर्वकल्याणं, स एव सुखभाजनम्।
स एव शुद्धचिद्रूपं, स एव परमः शिवः ॥१८॥

स एव परमानन्दः, स एव सुखदायकः।
स एव परचैतन्यं, स एव गुणसागरः ॥१९॥

अर्थ—अर्थात् वह परमध्यानी योगी मुनि ही परमब्रह्म तथा घातिया कर्मो को जीतने से जिन शुद्धरूप हो जाने से परम आत्म-तत्त्व, जगत मात्र के हित का उपदेशक हो जाने से परमगुरु, समस्त पदार्थों के प्रकाश करने वाले ज्ञान से युक्त हो जाने से परमज्योति, ध्यान-ध्याता के अभेदरूप हो जाने से शुक्लध्यान रूप परमध्यान व परमतपरूप परमात्मा के वास्तविक स्वरूपमय हो जाता है तथा वही परमध्यानी मुनि ही सर्व प्रकार के कल्याणों से युक्त, परमसुख का पात्र, शुद्ध, चिद्रूप, परमशिव कहलाता है और वही परमानन्दमय, सर्व सुखदायक, परमचैतन्य आदि अनन्तगुणों का समुद्र हो जाता है।

परमाल्हाद- सम्पन्नं, राग-द्वेष विवर्जितम्।
अर्हन्तं देहमध्ये तु, यो जानाति सः पण्डितः ॥२०॥

अर्थ—इस प्रकार ऊपर कहे हुए परम आल्हादयुक्त, राग द्वेष शून्य अर्हन्तदेव को जो ज्ञानी पुरुष अपने देहरूपी मंदिर में विराजमान देखता व जानता है, वही पुरुष वास्तव में पण्डित कहा जा सकता है।

आकार रहितं शुद्ध, स्व-स्वरूप व्यवस्थितम्।
सिद्धमष्टगुणोपेतं, निर्विकार निरजनम् ॥२१॥

अर्थ—इसी प्रकार अर्हन्त भगवान के स्वरूप की तरह सिद्ध परमेष्ठी के स्वरूप को रूपरसादिमय आकार से रहित, शुद्ध निज स्वरूप में विराजमान, रागादि विकारों से शून्य, कर्म मल से रहित, क्षायिक सम्यग्दर्शन, केवल ज्ञान, केवल दर्शन, अनन्त वीर्य, सूक्ष्मत्व, अव्याबाध, अगुरुलघुत्व, और अवगाहनारूप अष्ट गुणों से सहित चिन्तवन करे।

तत्सदृशं निजात्मान, प्रकाशाय महीयसे।
सहजानन्दचैतन्य, यो जानाति सः पण्डितः ॥२२॥

अर्थ—सिद्ध परमेष्ठी के समान तीन लोक व तीनों कालवर्त्ती समस्त अनन्त पदार्थों का एक साथ प्रकाश करने वाले केवलज्ञान आदि गुणों की प्राप्ति के लिए जो पुरुष अपनी आत्मा को भी परमानन्दमय, चैतन्यचमत्कारयुक्त जानता है, वही वास्तव में पण्डित है।

पाषाणेषु यथा हेम, दुग्धमध्ये यथा घृतम्।
तिलमध्ये यथा तैल, देहमध्ये तथा शिवः ॥२३॥
काष्ठमध्ये यथा वन्हिः, शक्तिरूपेण तिष्ठति।
अयमात्मा शरीरेषु, यो जानाति स पण्डितः ॥२४॥

अर्थ—जिस प्रकार सुवर्ण-पाषाण में सोना गुप्त रीति से छिपा रहता है तथा दुग्ध में जैसे घृत व्याप्त रहता है, तिल में जैसे तेल व्याप्त रहता है उसी प्रकार शरीर में परमात्मा को विराजमान समझना चाहिए। अथवा जैसे काष्ठ के भीतर अग्नि शक्तिरूप से रहती है उसी प्रकार शरीर के भीतर शुद्ध आत्मा को जो पुरुष शक्तिरूप से विराजमान देखता है वही वास्तव में पण्डित हैं।

श्री भट्टाऽकलंकप्रणीत

स्वरुपसम्बोधन

मुक्ताऽमुक्तैं करूपो यः, कर्मभिः सविदादिना।
अक्षय परमात्मानं, ज्ञानमूर्ति नमामि तम् ॥१॥

अर्थ—मंगलाचरण करते हुए आचार्य श्री अकलंकभट्ट कहते हैं

कि जो अविनश्वर ज्ञानमूर्ति परमात्मा ज्ञानावरणादि द्रव्य-कर्मों से, रागादि भावकर्मों से व शरीर रूप नोकर्म से मुक्त (रहित) है और सम्यग्ज्ञान आदि अपने स्वाभाविक गुणों से अमुक्त (युक्त) है उस परमानन्दमय परमात्मा को मैं नमस्कार करता हूं।

अर्थात् उपर्युक्त तीन प्रकार के कर्मों को नष्ट कर देने के कारण जो मुक्तरूप है और अनंतदर्शन, अनंतसुख, अंनतवीर्य, आदि गुणों से युक्त होने के कारण जो अमुक्त रूप है और ज्ञान ही जिसकी मूर्ति है उस अविनश्वर परमात्मा को नमस्कार है।

मीमांसक परमात्मा का कर्म रहित नहीं मानते इसलिए उनके मत को निराकरण करने के लिए कर्ममुक्त विशेषण दिया गया है। नैयायिक व वैशेषिक, मुक्तजीव में ज्ञानादि विशेष गुणों का भी अभाव मानते हैं इसलिए ज्ञानादि से अमुक्त विशेषण दिया है। कोई-कोई मतावलम्बी मुक्ति से फिर वापिस आना मानते हैं इसलिए अक्षय विशेषण दिया गया है, सांख्य मतावलम्बी परमात्मा को ज्ञानरहित मानते हैं इसलिए ज्ञानमूर्ति विशेषण दिया गया है। और मुक्तामुक्त कहने से स्याद्वाद की सिद्धि भी की गई है तथा आगे भी प्राय: प्रत्येक श्लोक में स्याद्वाद की सिद्धी की जायगी।

सोऽस्त्यात्मा सोपयोगोऽयं क्रमाद्धेतुफलावहः।
यो ग्राह्योऽग्राह्यनाद्यन्तः स्थित्युत्पत्तिव्ययात्मकः ॥२॥

अर्थ—वह परमात्मा आत्मरूप होने के कारण स्वरूप है, और ज्ञान-दर्शन-रूप होने से कार्य स्वरूप भी है। इसी तरह केवल ज्ञान के द्वारा जानने योग्य होने से ग्राह्य स्वरूप है, और इन्द्रियों के द्वारा न जानने योग्य होने से अग्राह्य स्वरूप भी हैं।

द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा नित्यरूप है, और परिणमनशील होने से पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा उत्पाद-विनाश स्वभाव भी है। इस प्रकार परमात्मा में अनेक तरह से अनेकांतपना सिद्ध होता है।

प्रमेयत्वादिभिर्धर्मैरचिदात्माचिदात्मकः।
ज्ञानदर्शनतस्तस्माच्चेतनाचेतनात्मकः ॥३॥

अर्थ—प्रमेयत्वादिक धर्मों की अपेक्षा से वह परमात्मा अचेतन रूप है और ज्ञानदर्शन की अपेक्षा से चेतन रूप भी है अर्थात् दोनों अपेक्षाओं से चेतन-अचेतन स्वरूप है।

भावार्थ—आत्मा में एक चेतना नाम का गुण है जिस गुण के ज्ञान

व दर्शन, ये दो पर्याय होते हैं। और इस चेतना गुण अथवा इसके ज्ञान-दर्शन, पर्यायों की अपेक्षा से ही आत्मा चेतन कहलाता है। इस चेतना गुण के अतिरिक्त आत्मा में और जो प्रेमयत्व (जिसके होने से वस्तु ज्ञान का विषय होती है) आदि अनन्त गुण ऐसे हैं जो पुद्गलादि अचेतन पदार्थों में भी पाये जाते हैं उन गुणों की अपेक्षा आत्मा एवं परमात्मा को अचेतन भी कह सकते हैं और इसीलिए आत्मा में चेतनपना व अवचेतनपना सिद्ध होता है।

ज्ञानाद्भिन्नो न चाभिन्ने, भिन्नाभिन्नः कथञ्चन।
ज्ञानं पूर्वापरीभूतं, सोऽयमात्मेति कीर्तितः ॥४॥

अर्थ—वह परमात्मा ज्ञान से भिन्न है और ज्ञान से भिन्न नहीं भी है अर्थात् ज्ञान से कथंचित् (किसी अपेक्षा से) भिन्न है सर्वथा (सब अपेक्षाओं से) भिन्न नहीं है। इसी प्रकार वह परमात्मा ज्ञान से अभिन्न है और ज्ञान से अभिन्न नही भी है अर्थात् ज्ञान से कथंचित् अभिन्न है सर्वथा अभिन्न नहीं है, क्योंकि पहले पिछले सब ज्ञानों का समुदाय ही मिलकर आत्मा कहलाता है।

भावार्थ—आत्मा नित्य परिणमनशील पदार्थ है और उसमें अनंत गुण हैं जिनमें ज्ञान गुण एक ऐसा है कि जो हमारे अनुभव में आता है और जिसके द्वारा हम अपनी व दूसरे की आत्मा को जान सकते हैं इस कारण ज्ञान गुण को ही यहां आत्मा कहा गया है। दूसरी बात यह है कि यह ज्ञान या चेतना गुण आत्मा में हमेशा रहते हुए भी परिणमता (बदलता) रहता है इस कारण किसी एक समय का ज्ञानमात्र ही आत्मा न होने से ज्ञान से आत्मा भिन्न है। और सर्व समयों के ज्ञानों का समुदाय रूप होने से ज्ञान से आत्मा अभिन्न है, इसी कारण ज्ञान से आत्मा को सर्वथा भिन्न वा अभिन्न न मानकर कथंचित् भिन्न अथवा अभिन्न माना गया।

स्वदेह प्रमितश्चायं, ज्ञानमात्रोऽपि नैव सः।
ततः सर्वगतश्चायं, विश्वव्यापी न सर्वथा ॥५॥

अर्थ—वह अरहंत परमात्मा अपने परम औदारिक शरीर के बराबर है और बराबर नहीं भी है अर्थात् समुद्घात (मूल शरीर में रहते हुए भी आत्मा के प्रदेशों का कारण विशेष से कार्मण आदि शरीरों के साथ बाहर निकलना) अवस्था में जिस समय केवली भगवान की आत्मा के प्रदेश सम्पूर्ण लोकाकाश में फैल जाते हैं उस

समय आत्मा औदारिक शरीर के बराबर नहीं है। इसी तरह वह परमात्मा ज्ञानमात्र है और ज्ञानमात्र नहीं भी है अर्थात् ज्ञानगुण को मुख्य करके व अन्य समस्त गुणों को गौण करके यदि विचारा जाय तो आत्मा या परमात्मा ज्ञानमात्र दृष्टि में आता है। और यदि अन्य गुणों को मुख्य किया जाय तो ज्ञान मात्र दृष्टि में नहीं भी आता है। इसी तरह जब केवल ज्ञान के द्वारा संपूर्ण लोक व आलोक को जानने की अपेक्षा लेते हैं तब परमात्मा को सर्वगत भी कह सकते हैं क्योंकि सम्पूर्ण पदार्थ परमात्मा से गत अर्थात् ज्ञात है और सम्पूर्ण पदार्थों को जानते हुए भी अरहन्त परमात्मा अपने दिव्य औदारिक शरीर में ही स्थित रहता है इसलिए वह विश्वव्यापी नहीं भी है।

भावार्थ—परमात्मा में उपर्युक्त धर्म कथंचित् सिद्ध होते हैं, सर्वथा सिद्ध नहीं होते।

नानाज्ञानस्वभावत्वादेकोऽनेकोऽपि नैव सः।
चेतनैकस्वभावत्वादेकानेकात्मको भवेत् ॥६॥

अर्थ—उस आत्मा में मतिज्ञान, (इन्द्रिय व मन से वस्तु को जानना) श्रुतज्ञान (मतिज्ञान से जाने हुए पदार्थ के सम्बन्धी को जानना) आदि अनेक ज्ञान होते हैं तथा और भी सम्यक्त्व (सच्चा विश्वास), चारित्र (सच्चा आचरण) आदि अनेक गुण होते हैं जिनके कारण यह आत्मा यद्यपि अनेक रूप हो रहा है तथापि अपने चेतन स्वरूप की अपेक्षा एकपने को नहीं छोड़ता, इसलिए इस आत्मा को कथंचित् अनेक रूप भी जानना चाहिए।

भावार्थ—जैसे एक पुरुष एक स्वरूप होकर भी पिता, पुत्र, चचा भतीजा आदि अनेक रूप कहा जाता है, क्योंकि पिता की अपेक्षा उसको पुत्र, और पुत्र की अपेक्षा उसी को पिता, भतीजे की अपेक्षा चचा और चचा की अपेक्षा भतीजा कहते हैं। उसी तरह एक आत्मा आत्मपने की अपेक्षा एक स्वरूप होकर भी अपने धर्मों की अपेक्षा अनेक रूप कहा जाता है।

नाऽवक्तव्यः स्वरूपाद्यै र्निर्वाच्यः परभावतः।
तस्मान्नैकान्ततो वाच्यो नापि वाचामगोचरः ॥७॥

अर्थ—वह आत्मा अपने स्वरूप की अपेक्षा वक्तव्य (कहे जाने योग्य) होने से सर्वथा अवक्तव्य (न कहे जाने योग्य) भी नहीं है। और पर पदार्थों के स्वरूप की अपेक्षा अवक्तव्य होने से सर्वथा वक्तव्य भी नहीं है।

भावार्थ—प्रत्येक पदार्थ अपने धर्मों की अपेक्षा से कहा जाता है या पुकारा जाता है, पर के धर्मों की अपेक्षा से नहीं व्यवहार किया जाता है। जैसे कि आम का फल, आम के नाम से कहा जाता है, केला अमरूद आदि के नाम से नहीं कहा जाता। इसलिये प्रत्येक वस्तु में अपने स्वभाव से कहे जाने की योग्यता व अन्य पदार्थों के स्वभाव से कहे जाने की योग्यता समझते हुए आत्मा में भी ऐसा ही समझना चाहिए।

स स्याद्वि धि-निषधात्मा स्वधर्म परधर्मयोः।
स मूर्तिर्बोधम् तिस्वादमूर्तिश्च विपर्ययात् ॥८॥

अर्थ—वह आत्मा अपने धर्मों का विधान करने वाला व अन्य पदार्थों के धर्मों का अपने में निषेध करने वाला है और ज्ञान के आकार होने से वह आत्मा मूर्तिक तथा पुद्गलमय शरीर से भिन्न होने के कारण अमूर्तिक है।

भावार्थ—आत्मा में जैसे स्वरुप की अपेक्षा विधिरूप धर्म है वैसे पर के स्वरूप की अपेक्षा निषेध रूप धर्म भी है। क्योंकि जैसे ज्ञानादिक आत्मिक धर्मों की अपेक्षा आत्मा की सत्ता सिद्ध होती है वैसे रूपरसादिक पुद्गल के धर्मों की अपेक्षा आत्मा की सत्ता नही सिद्ध होती। इसके अतिरिक्त, ज्ञान का पुंज होने के कारण जैसे आत्मा मूर्तिक कहा जा सकता है उसी तरह पुद्गल परमाणुओं का बना हुआ न होने से अमूर्तिक भी कहलाता है।

इत्याद्यनेकधर्मत्वं बन्धमोक्षौ तयोः फलम्।
आत्मा स्वीकुरुते तत्तत्कारणैः स्वयमेव तु ॥९॥

अर्थ—इस प्रकार पहले कहे हुए क्रम के अनुसार यह आत्मा अनेक धर्मों को स्वयं धारण करता है और उनके धर्मों के फल स्वरूप बंध व मोक्ष रूप भी कारणाधीन स्वयं परिणमता है।

भावार्थ—यह आत्मा राग-द्वेषादि कारणों से कर्म का बंध करके पराधीन व दुखी भी अपने आपही होता है, और ज्ञान, ध्यान, जप, तप, आदि कारणों से बन्ध अवस्था नष्ट करके मुक्ति तो प्राप्त कर स्वाधीन भी स्वयं ही हो जाता है।

कर्ता यः कर्मणां भोक्ता तत्फलानां स एव तु।
बहिरन्तरुपायाभ्यां तेषां मुक्तत्वमेव हि ॥१०॥

अर्थ—जो आत्मा बाह्यशत्रु-मित्र आदि व अन्तरंग रागद्वेष आदि

कारणों से ज्ञानावरणादिक कर्मों का कर्ता व उसके सुख-दुःख फलों का भोक्ता है, वही आत्मा बाह्य स्त्री, पुत्र,धनधान्यादि का त्याग करने से कर्मों के कर्ता-भोक्तापने के व्यवहार से मुक्त भी है। अर्थात् जो संसार दशा में कर्मों का कर्ता व भोक्ता है वही मुक्त दशा में कर्मों का कर्ता भोक्ता नहीं भी है।

सद्दृष्टि-ज्ञान-चरित्रमुपायः स्वात्म-लब्धये।
तत्त्वे याथात्म्यसंस्थित्यमात्मनो दर्शनम् मतम्। ११॥
यथावद्वस्तुनिर्णीतः सम्यग्ज्ञानं प्रदीपवत्।
तत्स्वार्थव्यवसायात्म कथञ्चित्प्रमितेः पृथक् ॥१२॥
दर्शन-ज्ञान-पर्यायेषूत्तरोत्तरभाविषु।
स्थिरमालम्बनं यद्वा माध्यस्थ्यं सुख-दुखयोः ॥१३॥
ज्ञाता दृष्टाऽहमेकोऽहं, सुखे दुःखे न चापरः।
इतीदं भावनादार्ढ्यं, चारित्रमथवाऽपरम् ॥१४॥

अर्थ—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और समयक् चारित्र ये तीनों अपने शुद्ध आत्मस्वरूप की प्राप्ति अर्थात् संसार से मुक्त होने के कारण, जिनमें से आत्मा के वास्तविक स्वरूप या सात तत्वों के सच्चे श्रद्धान को तो सम्यग्दर्शन कहते हैं। पदार्थोंके वास्तविकपने से निर्णय करने को सम्यग्ज्ञान कहते हैं। यह सम्यग ज्ञान दीपक की तरह अपना तथा अन्य पदार्थों का प्रकाशक होता है, और अज्ञान-निवृत्ति रूप जो फल है उससे कथञ्चित् भिन्न भी है। स्त्री, पुत्रादिक बाह्य पदार्थों की मोह-ममता को त्याग कर जो अपनी ही क्रम-क्रम से होने वाली ज्ञान-दर्शनादिक पर्यायों में आत्मा के उपयोग का स्थिर होना है, उसे सम्यक्चारित्र कहते हैं। अथवा सांसारिक सुख-दुःखों में मध्यस्थभाव रखने को सम्यकचारित्र कहते हैं, या मैं ज्ञाता दृष्टा हूं, अपने कर्त्तव्य के फलस्वरूप सुख-दुःखों का भोगने वाला स्वय अकेला ही हूं, बाह्य स्त्री-पुत्रादि पदार्थों का मेरे से कोई सम्बन्ध नही है इत्यादि अनेक प्रकार की शुद्ध आत्मस्वरूप में तल्लीन कराने वाली भावनाओं की दृढ़ता को भी सम्यक्चारित्र कहते हैं।

तदेतन्मूलहेतोः स्यात्कारणं सहकारकम्।
तद्बाह्यं देशकालादि तपश्च बहिरङ्गकम् ॥१५॥

अर्थ—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र को जो ऊपर के श्लोकों में मोक्ष-प्राप्ति का मूल कारण बताया है उनके सहकारी कारण

बाह्य देश-कालादिक व अनशन, अवमौदर्य आदि बाह्य तप समझने चाहिए।

भावार्थ—मोक्ष-प्राप्ति में जैसे रत्नत्रय अंतरंग कारण है वैसे ही उत्तम क्षेत्र, दु:खमसुखमा काल व वज्रर्षभनाराचसंहनन, उपवास आदि तप बाह्य कारण हैं।

इतीदं सर्वमालोच्य, सौस्थ्ये दौःस्थ्ये च शक्तितः।
आत्मानं भावयेन्नित्यं, राग-द्वेष-विवर्जितम् ॥१६॥

अर्थ इस प्रकार तर्क-वितर्क के साथ आत्मस्वरूप को अच्छी तरह जान कर सुख में व दुःख में यथाशक्ति आत्मा को नित्य ही राग-द्वेष रहित चितवन करना चाहिए अर्थात् सुख-सामग्री के मिलने पर राग नहीं करना चाहिए और अनिष्ट समागम में द्वेष नही करना चाहिए, क्योंकि ये सब इष्ट-अनिष्ट पदार्थ आत्मा की कुछ भी हानि नही कर सकते। इनका सम्बन्ध केवल शरीर से रहता है ऐसा विचार रखना चाहिए।

कषायैं रञ्जितं चेतस्तत्त्वं नैवावगाहते।
नीलीरक्तेऽम्बरे रागो, दुराधेयो हि कौङ्कुमः ॥१७॥

अर्थ—क्रोधादि कषायों से रजायमान हुए मनुष्य का चित्त वस्तु के असली स्वरूप को नहीं पहिचान सकता, जैसे कि नीले कपड़े पर केसर का रंग नहीं चढ़ सकता।

भावार्थ—वस्तु के यथार्थस्वरूप को जानने का यत्न करने से भी पहले हृदय से क्रोधादि कषायों को दूर करना चाहिए, तभी वस्तु का वास्तविक ज्ञान प्राप्त हो सकेगा। जैसे अग्नि से जली हुई भूमि में अंकुर नहीं उगता, वैसे ही कषाय से दग्ध हृदय में धर्मांकुर नहीं उगता। प्रत्येक पुरुष को निरन्तर कषायों को दूर करने के लिए पूर्ण प्रयत्न करते रहना चाहिए, जिससे कि वे संसार सागर में डूबी हुई अपनी आत्मा का उद्धार कर सकें।

ततस्त्वं दोष-निर्मुक्त्यै, निर्मोहो भव सर्वतः।
उदासीनत्वमाश्रित्य तत्त्व-चिन्तापरो भव ॥१८॥

अर्थ—आचार्य व्यवहारी जीव से कहते हैं कि हे भाई! जब राग-द्वेष के बिना दूर किए आत्महित नहीं हो सकता तब तुमको राग-द्वेष नष्ट करने के लिए शरीरादिक परपदार्थों का मोह त्यागकर और संसार, शरीर व भोगों से उदासीन भाव धारण करके तत्त्व-विचार में तन्मय रहना चाहिए।

हेयोपादेयतत्त्वस्य, स्थितिं विज्ञाय हेयतः ।
निरालम्बो भवान्यस्मादुपेये सावलम्बनः ॥१६॥

अर्थ—हेय (त्यागने योग्य) व उपादेय (ग्रहण करने योग्य) पदार्थों का स्वरूप जानकर हेय वस्तु को त्यागना चाहिए व उपादेय वस्तु को ग्रहण करना चाहिए।

भावार्थ—जो स्त्री, पुत्र, धन, धान्य, शत्रु, मित्रादि पदार्थ आत्म-हित में बाधक व रागद्वेष के बढ़ाने वाले हैं, उनसे सम्बन्ध छोड़ना चाहिए और संसारी को एकमात्र पंच परमेष्ठी का शरण ग्रहण कर ज्ञान-ध्यानादि में तन्मय रहना चाहिए।

स्वं परं चेति वस्तुत्वं, वस्तुरूपेण भावय ।
उपेक्षाभावनोत्कर्षपर्यन्ते शिवमाप्नुहि ॥२०॥

अर्थ—अपनी आत्मा के र पर पदार्थों के असली स्वरूप का बार-बार चिंतवन करना चाहिए और समस्त संसारी पदार्थों की इच्छा का त्याग करके उपेक्षा (राग-द्वेष के त्याग की) भावना को बढ़ाते-बढ़ाते मोक्ष पद प्राप्त करना चाहिए।

मोक्षेऽपि यस्य नाकांक्षा स मोक्षमधिगच्छति ।
इत्युक्तत्वाद्धितान्वेषी, कांक्षा न क्वापि योजयेत् ॥२१॥

अर्थ—जब किसी साधु महात्मा पुरुष के हृदय से मोक्ष की भी इच्छा निकल जाती है तभी उसको मुक्ति प्राप्त हो सकती है इस सिद्धान्त-वाक्य के ऊपर ध्यान देते हुए आत्महित के इच्छुक जीवों को सभी पदार्थों की इच्छा का त्याग करना चाहिए।

भावार्थ—किसी भी पदार्थ की प्राप्ति प्रयत्न करने से होती है, इच्छामात्र से नहीं होती। यहां तक कि मोक्ष की इच्छा करने से मोक्ष भी प्राप्त नहीं होता, किन्तु इच्छा करने से मोक्ष-प्राप्ति में उलटी बाधा उपस्थित होती है, इसलिए आत्मा का हित चाहने वाले पुरुषों को इच्छा को सर्वथा त्याज्य समझना चाहिए।

साऽपि च स्वात्मनिष्ठत्वात्सुलभा यदि चिन्त्यते ।
आत्माधीने सुखे तात, यत्नं किं न करिष्यसि ॥२२॥

अर्थ—यदि कोई यह कहे कि इच्छा करना तो अपने आधीन होने से सुलभ है किन्तु फल प्राप्ति अपने आधीन न होने से कठिन है इसलिए इच्छा किसी भी वस्तु की जा सकती है, ऐसा कहने वाले को आचार्य करुणापूर्वक कहते हैं कि हे भाई! जैसे इच्छा करना आत्माधीन होने से

सुलभ है वैसे ही परमानन्दमय सुख का पानी भी तो आत्मा के ही आधीन है इसलिए तुम उस सुख की प्राप्ति का प्रयत्न ही क्यों नहीं करते, जिससे कि संसार के झगड़ों से छूटकर हमेशा के लिए निराकुलित हो जाओ।

स्वं परं विद्धि तत्रापि, व्यामोहं छिन्धि किन्त्वमम्।
अनाकुल-स्वसंवेद्ये, स्वरूपे तिष्ठ केवले ॥२३॥

अर्थ—आचार्य कहते हैं कि मुक्ति प्राप्त करना भी अपने ही आधीन समझ कर स्व और पर को जानना चाहिए तथा बाह्य पदार्थों के मोह को नष्ट करना चाहिए और आकुलता रहित स्वानुभवगम्य केवल अपने निज स्वरूप में ही स्थिर होना चाहिए।

स्वः स्वं स्वेन स्थितं स्वस्मै स्वस्मात्स्वस्याविनश्वरे।
स्वस्मिन् ध्यात्वा लभेत्स्वोत्थमानन्दममृतं पदम ॥२४॥

अर्थ—इस श्लोक में आचार्य आत्मा में ही सातों कारक सिद्ध करते हुए कहते हैं कि व्यवहारी जीवों को अपने ही आत्मा में अपने ही आत्महित के लिए अपने ही द्वारा अपने आप ही अपना ध्यान करना चाहिए और अपने ही ध्यान से उत्पन्न हुए परमानन्दमय अविनश्वर पद को प्राप्त करना चाहिए।

इति स्वतत्त्वं परिभाव्य वाङ्मयं, य एतदाख्याति श्रृणोति चादरात्
करोति तस्मै परमार्थसम्पद, स्वरूपसम्बोधन-पञ्चविंशतिः ॥२५॥

अर्थ—श्री अकलंकभट्टाचार्य उपसंहार करते हुए ग्रंथ का माहात्म्य वर्णन करते हैं कि जो पुरुष पच्चीस श्लोकों में कहे हुए इस 'स्वरूप-सम्बोधन' ग्रंथ को पढ़ेगे, सुनेंगे और इसके वाक्यों द्वारा कहे हुए आत्मतत्व का बारम्बार मनन करेंगे उनको यह ग्रन्थ परमार्थ की सम्पत्ति अर्थात् मोक्षपद प्राप्त करावेगा।

श्री बाहुबली काव्य

मंगलाचरण

[रचयिता—आनन्द स्वरूप जैन, खतौली, मुज्जफरनगर]

अरिहन्त सिद्ध आचार्य अरु उपाध्याय सर्व साधु।
नमूं इन्हे गुण चिन्तवन, करूं सुख लंहू अव्याबाध ॥
था जिन्हे स्वतन्त्रता से प्यार, इस युग में हुए श्री बाहुबली।
ऋषभदेव के वीर पुत्र थे मात सुनन्दा के नन्दन ॥
प्रथम कामदेव इस युग के, था वज्रवृषभ नाराच संहनन।

जन्म स्थान अयोध्या नगरी, जहां तीर्थंकर ले जन्म सभी ॥
इस युग में हुए श्री बाहुबली ॥१॥
जिनके थे भरत ज्येष्ठ भ्राता, लघु निन्यानवे सहोदर जिनके थे ।
थे निपुण सभी विद्याओं में, जिन धर्म में अति रुचि रखते थे ॥
श्री ऋषभदेव जग से विरक्त भये, पुत्र बुलाये पास सभी ।
इस युग में हुए श्री बाहुबली ॥२॥
दिया भरत को राज अयोध्या, पौदनपुर के नृप श्री बाहुबली ।
यथा योग्य सब को राज दिया सब जीवों के प्रति क्षमा करो ॥
द्वादश अनुप्रेक्षा भाई प्रभु ने, लोकान्तिक सुर आये तभी ।
इस युग में हुए श्री बाहुबली ॥३॥
हे धन्य धन्य स्वामी तुमको, इस युग में हुए प्रथम तीर्थंकर ।
मति श्रुति अवधि ज्ञान युत जन्मे हो नाथ तुम्ही जग में प्रवर ॥
हम आये नियोग पुरा करने, वैराग्य में दृढ हो नाथ अती ।
इस युग में हुए श्री बाहुबली ॥४॥
तत्क्षण सुरपति सुर भी आये, शिविका में स्वामी पधराये ।
उत्सव करते तपोबन आये, स्वच्छ शिला पर स्वामी पधराये ।
वस्त्राभूषण तज नग्न हुए, केशों का लोच किया था तभी ।
इस युग में हुए श्री बाहुबली ॥५॥
स्मरण किया फिर सिद्धों का, निज आतम ध्यान में लीन भये ।
उपवास किया छः महीने का, वो मोन सहित तप करते रहे ॥
पश्चात् चले वो चर्या को, आहार विधि न कही मिली ।
इस युग में हुए श्री बाहुबली ॥६॥
छः महीने यूं ही व्यतीत भये हस्तिनापुर के बन में आये ।
राज करे नृप सोम श्रेयांश जिन धर्म के प्रति दिन गुण गाये ॥
श्रेयांश राजा को स्वप्न हुआ, कोई महान पुरुष आयेंगे अभी ।
इस युग में हुए श्री बाहुबली ॥७॥
थे दोनों भ्रात प्रतीक्षा में तब द्वार प्रभु उनके आये ।
श्रेयांश को भया जाति स्मरण, दर्श प्रभु के ज्यों पाये ॥
आ गई याद आहार विधि, हिय पुलकित भारी हुवा तभी ।
इस युग में हुए श्री बाहुबली ॥८॥
नवधा भक्ति से पडगाया था, इक्षुरस का आहार दिया ।
देवो ने कीने पंचाश्चर्य, नहीं हर्ष का पारावार रहा ॥

थे चले तपोवन रिषभ देव, नरनार करे जयकार सभी ।
इस युग में हुए श्री बाहुबली ॥९॥
सहस्त्र वर्ष तक तप किना, फिर पुरिम ताल पर वो आये ।
वे बैठे स्वच्छ शिलातल पर, चार धाति कर्म विनष्ट किये ॥
भया केवल ज्ञान प्रगट प्रभु को, तिहूं लोक में आनन्द छाया अती ।
इस युग में हुए श्री बाहुबली ॥१०॥
इन्द्र आज्ञा से धन ति ने, आ रचा समवशरण अति सुखकारी
भक्ति भाव से आये थे वहां पर, सुर इन्द्र शची अरु नर नारी ॥
गुण गान करे सभी प्रभु का, अरू भक्ति भाव से पूजा करी ।
इस युग में हुए श्री बाहुबली ॥११॥
थे भरत विराजे आसन पर दूतो से समाचार पाया ।
हे उपजा केवल ज्ञान प्रभु को उर में था आनन्द अति छाया ।
शीघ्र चक्र उत्पन्न हुआ और पुत्रोत्पत्ति की सूचना मिली ।
इस युग में हुए श्री बाहुबली ॥१२॥
थे न्याय निति में चतुर भरत, क्षायिक सम्यक दृष्टि भी थे ।
थे अवध ज्ञान से युक्त वही, जिन गुणों में रूचि रखते थे ॥
परिवार सहित चल पड़े दर्श को, जिन धर्म समान न और कोई ।
इस युग में हुए श्री बाहुबली ॥१३॥
सब भ्रात तात वे संग चले, नरनार सभी भी सग में थे ।
आ गये समवशरण के पास सभी, जयकार सभी मिल करते थे ।
दी तीन प्रदक्षिणाये सबने, नहीं हर्ष की कोई सीमा रही ।
इस युग में हुए श्री बाहुबली ॥१४॥
श्री ऋषभ प्रभु के दर्श किये, गुणगान किया सबने मिलकर ।
पूजा स्तुति की थी सबने, बैठे निज निज स्थानों पर ॥
था भाव हृदय मे जाग उठा, दिव्य ध्वनि की प्रतीक्षा थी ।
इस युग में हुए श्री बाहुबली ॥१५॥
प्रभु वाणी मुख से खिरने लगी, गणधर थे बने श्री ऋषभ सेन ।
तत्वों का विवेचन हुआ महत, समझे सब अपनी भाषा में वैन ॥
सम्यक्त्व आदि था ग्रहण किया, सब जीवों में यथा योग्य ही ।
इस युग में हुए श्री बाहुबली ॥१६॥
प्रभु की वाणी सुन भरतराज, सवेग भाव था दृढ़ अति भया ।
त्रय योग सहित कर नमस्कार, था राजधानी प्रयाण किया ॥

फिर किया चक्र सम्मान उन्होंने, पुत्र जन्मोत्सव किया अती ।
इस युग में हुए श्री बाहुबली ।।१७।।
पश्चात भरत ने हो प्रसन्न दिग्विजयार्थ प्रयाण किया ।
बत्तीस सहस्र राजा जीते, व्यन्तर देवो को वश में किया ।।
ऋषभाचल पर जब वे आये, प्रशस्ति लिखने की उमंग उठी ।
इस युग में हुए श्री बाहुबली ।।१८।।
था अन्तरग में भाव जगा चक्रवर्ती पद मैने पाया ।
मुझसा न हुआ होगा न कोई, यह भाव हृदय में था छाया ।
जब प्रशस्ति क्षेत्र पर गई दृष्टि, अभिमान गला तब क्षण में ही ।
इस युग में हुए श्री बाहुबली ।।१९।।
स्थान मिला न लिखने को, वहां नाम अनेकों अंकित थे ।
तब अन्य की प्रशस्ति को मिटा, निज नामांकित वहां करते हैं ।
हूं ऋषभ तीर्थकर का प्रथम पुत्र, इस युग का पहला चक्रवर्ती ।
इस युग में हुए श्री बाहुबली ।।२०।।
पश्चात आये वह कैलाश शिखर, श्री ऋषभ प्रभु का दर्श किया ।
वाणी सुनकर श्री ऋषभ देव की, कर्मो को उपशान्त किया ।
कर नमस्कार श्री ऋषभ देव को चले अयोध्या चक्रवर्ती ।
इस युग में हुए श्री बाहुबली ।।२१।।
जब निकट अयोध्या के आये, न चक्र नगर में प्रवेश किया ।
चिन्ता से आतुर भरत हुए, मत्रीवर से परामर्श किया ।।
मत्री बोले अभी जीतने बाकी, पोदन पुर के श्री बाहुबली ।
इस युग में हुए श्री बाहुबली ।।२२।।
था दूत एक चक्री बुलवाया, युक्ति से उसको समझाकर ।
फिर पोदन पुर को भेज दिया, वे रहे हमारे आज्ञाकारी बनकर ।
है यह विवशता हमारे सामने, चक्र नगर में गया ही नहीं ।
इस युग में हुए श्री बाहुबली ।।२३।।
पहुंचा दूत नगर पोदनपुर, बाहुबली को प्रणाम किया ।
युक्ति से सबकुछ समझाया, फिर भरत राज संदेश दिया ।
सुनकर वीर बाहुबली ने, फिर उत्तर कड़ा दिया था तभी ।
इस युग में हुए श्री बाहुबली ।।२४।।
है ऋषभ देव का पुत्र भरत, मैं भी तो उनका बेटा हूं ।
है राज दिया मुझको प्रभु ने, क्या शक्ति में-मैं छोटा हूं ।।

वो करता मान चक्ररत्न का, जो मेरी दृष्टि में कुछ भी नहीं।
इस युग में हुए श्री बाहुबली ॥२५॥
हैं हमें स्वतन्त्रता से प्यार, हम आँच न उसको आने देंगे।
गर करे कोई हम पर प्रहार, निज बल से हम उत्तर देंगे॥
कह देना राजा से अ ने, आज्ञा माने नहीं बाहुबली।
इस युग में हुए श्री बाहुबली ॥२६॥
उत्तर पाकर के दूत तुरन्त, था निकट भरत राज आया।
सारा वृतान्त सुना उनको, भाव बाहुबली का दर्शाया॥
जो होय उचित करीये राजन, नही तनिक झुकेंगे बाहुबली।
इस युग में हुए श्री बाहुबली ॥२७॥
यह सुन भरत ने हो क्रोधित, रण भेरी का आदेश दिया।
चतुरग सेना साथ में ले, पोदनपुर पर आक्रमण किया।
श्री बाहुबली ने भी सुनकर, निज सेना रण में भेज दई।
इस युग में हुए श्री बाहुबली ॥२८॥
थी समर भूमि तरुणी वत इक, तह दोनों ओर से सजी हुई।
तब ही दोनों के मत्रियों ने, यह मंत्रणा आ स में थी करी॥
ये दोनों तो हैं चरमशरीरी सेना व्यर्थ में कटे नही।
इस युग में हुए श्री बाहुबली ॥२९॥
सोचो युक्ति कोई ऐसी, जो आपस में दोनों लड़ लें।
और उसके द्वारा ही दोनों, हार जीत निर्णय कर ले॥
जल, दृष्टि, मल्लयुद्ध, दोनों अनुज ये कर ले स्वय ही।
इस युग में हुए श्री बाहुबली ॥३०॥
स्वीकार किया यह सबने ही, तब दोनों ही युद्ध स्थल आये।
दृष्टि से दृष्टि मिली दोनों की, तब भरत हार कर शर्माये॥
बाहुबली की प्रथम युद्ध में कार्य ऊंचाई सहाय भई।
इस युग में हुए श्री बाहुबली ॥३१॥
जल युद्ध तभी प्रारम्भ हुआ, छींटा छांटी वे करते थे।
छाती पर लगते बाहुबली के, भरत के नेत्रों में पड़ते थे॥
उसमें भी हारे भरत राज, था शोक हृदय में हुआ अती।
इस युग में हुए श्री बाहुबली ॥३२॥
लज्जित थे भरत अति मन में, थी मल्ल युद्ध में विजय आशा।
आयेगा समक्ष भ्रात जब ही, कर दूंगा धूमिल राज्यशा॥

दूंगा कुछ शिक्षा ऐसी ही, फिर नहीं लड़ेगा किसी से कभी।
इस युग में हुए श्री बाहुबली ॥३३॥
दोनों आपस में मल युद्ध के, उतरे बीर अखाड़े में।
दोनों आपस में लड़ने लगे, थे भरत अधिक ही तरंगों में ॥
वो दांव अधिक ही करते रहे, सब बार बचाते बाहुबली।
इस युग में हुए श्री बाहुबली ॥३४॥
बहुत देर हुई लड़ते लड़ते, थक रहे अन्तर में चक्रपती।
फिर भी साहस से लड़ते रहे, विजय आशा अभी थी बनी हुई ॥
वार बचाते रहे मल्लयुद्ध में, हंसते हंसते श्री बाहुबली।
इस युग में हुए श्री बाहुबली ॥३३॥
कुछ देर में श्री बाहुबली ने, चक्रीश को हाथों में उठाया।
दे पटक अभी भूमि पर—यह भाव हृदय में था आया ॥
है पूज्य पिता सम बड़े भ्रात, यह सोच स्कन्ध बिठाया तभी।
इस युग में हुए श्री बाहुबली ॥३६॥
तीनों युद्धों में हारे थे, थे दुःखी भरत राज भारी।
था क्रोध हृदय में उमड़ पड़ा, और चक्र चलाया था भारी ॥
ऐसे अवसर पर भरत राज थे, भूल गये सब सुद्धबुध ही।
इस युग में हुए श्री बाहुबली ॥३७॥
थे चकित सभी दर्शक उर में, और हा-हा कार वो करते थे।
बच जाये स्वामी बाहुबली, अन्तरंग भाव ये धरते थे ॥
धिक्कार है ऐसे राज्यों को जो भाई पर भी दया न करी।
इस युग में हुए श्री बाहुबली ॥३८॥
नभ में शंकित थे सुर मन में, विधाधर भी दुःख मान रहे।
नहीं आंच तनिक इनको आये, ऐसी भावना वो भाये रहे ॥
चक्र ने तीन प्रदक्षणा देकर, चरणों में सीस झुकाया तभी।
इस युग में हुए श्री बाहुबली ॥३९॥
तब विनय युक्त हो बाहुबली ने, कन्धों से भरत उतारा था।
जग का है सब वैभव नश्वर, यह भाव हृदय में आया था ॥
शेष आयु कर्म यह मेरा था, पर भ्रात ने छोड़ी कसर ही नहीं।
इस युग में हुए श्री बाहुबली ॥४०॥
हे राज्य चाहे भ्राता तुमको, यह चक्र रत्न और वैभव लो।
मेरी दृष्टि से तृण सम यह, इनसे तुम अपना जी भर लो ॥

तृष्णा का गर्त बड़ा ऐसा, यह पूरा होता कभी नहीं।
इस युग में हुए श्री बाहुबली ॥४१॥
जो अविनय मुझसे हुई तुम्हारी, अपराध क्षमा भ्राता करना।
नहीं रंच कषाय हिये मेरे, करूं आत्म कल्याण यह ध्येय मेरा ॥
सब और यह चर्चा फैली, सब वैभव छोड़ रहे श्री बाहुबली।
इस युग में हुए श्री बाहुबली ॥४२॥
थे भरत राज लज्जित मन में, था खेद स्वयं की करनी पर।
फिर भी साहस कर यूं बोले, तुम सुनो अनुज मेरी भी कुछ ॥
भवितव्य बड़ा बलवान जगत में, बुद्धि मलीन होती चतुरों की ॥४३॥
है खेद मुझे निज करनी पर, जो प्यार तुम्हें मैं करता था।
वह एक समय में गया बिखर, यह होनहार यूं होना था ॥
न नगर में प्रवेश चक्र न किया, बस यही विवशता मेरी थी ॥इस०४४॥
गर उसी समय में हो सचेत, स्वयं तुमसे ही मै मिल लेता।
न बढ़ता व्यर्थ रोष इतना, न यह अनर्थ मुझसे होता ॥
कहूं इससे अधिक क्या तुम से यह, त्रुटी क्षमा करो मेरी ॥इस०४५॥
जिन दीक्षा लेने में नहीं बाधक, कुछ समय और तुम रुक जाओ
पालन करते रहो पंच अणु ब्रत, फिर संयम को भी अपनाओ।
है चरम शरीरी तुम भैया, इसमे कुछ संशय है ही नहीं ॥इस०४६॥
फिर बाहुबली यह कहने लगे, झूठे झगड़े जग के सारे।
जल बुद बुद वत यह जीवन है, जो करना आज करो प्यारे ॥
जो कल के ऊपर रहते है, कल उनकी न पूरी होती कभी ॥इस०४७॥
भोगे यह चिर से भोग अति, नहीं तृप्ति हुई इन भोगों से।
पदवी पाई कितनी कितनी, नही फिरा यह मन इन लोगों से ॥
है अटल यही निश्चय मेरा, मैं छोड़ूंगा वैभव राज सभी ॥इस०४८॥
चल दिये छोड़कर वैभव को, नृप संग अनेकों उनके थे।
श्री ऋषभ प्रभु के दर्शन कर, जिन दीक्षा भाव प्रगट थे किए।
वस्त्राभूषण तज नग्न भये, केशों का लोच किया था तभी ॥इस०४९॥
स्मरण किया फिर सिद्धों का, खडगासन ध्यान लगाया था।
धार वृत मौन वर्ष भर का, तत्व चिन्तन को अपनाया था ॥
नहीं करे असन, नहीं करे शयन, निराहार थे वह पहले से ही ॥इस०५०॥
ये करे साधना मूल गुणों की, गुप्ति समिति पालन करते।
द्विवीस परीषह सह करके, कर्मों की संवर निर्जरा भी करते।

था भाव सौम्य बैठा मन में, निज ध्यान में लीन रहे वे यति ॥५१॥
निष्प्रह शरीर से ऐसे हुए, मृग उपल खाज खुजलाने लगे।
चरणों के निकट बना वामी, अहि मौज से उनमें रहने लगे।
गयी प्रभु के तन से बेल लिपट, निज ध्यान में लीन रहे वे यति ॥५२॥
सब रिद्धि सिद्धि पड़ी आ चरणों में, इनसे न प्रभु का नाता था।
नश्वर तन से थे निर्मोही, निज आतम ध्यान से नाता था।
नहीं हर्ष विषाद करे उर में, निज ध्यान में लीन रहे वे यति ॥५३॥
थी घोर तपस्या स्वामी की प्रभु अविचल मेरु समान रहे।
तत्व चिन्तन में थी दृष्टि लगी, तप अनल में कर्म स्वयं जलते रहे।
आत्म अनुभव रसपान करे, निज ध्यान में लीन रहे वे यति ॥५४॥
कभी विकल्प यह आता था मन में, अपमानित हुआ भरत मेरे द्वारा।
वरना वो तपस्या ऐसी थी, हो जाता पूर्ण ज्ञान प्रगट सारा ॥
पूरा वर्ष व्यतीत होने को था, निज ध्यान मे लीन रहे वे यति ॥५५॥
नर नार सभी आदर्श करे, सब मिलकर जय जय कार करे।
गुणगान प्रभु का सभी करे, त्रय योग से मिलकर नमन करे ॥
था सबका एक ही वाक्य—नही देखा ऐसा वीर यति ॥इस०५६॥
था यश सौरभ फैला जग में, थे भरत दर्श करने आये।
था शीश नवाया चरणों में, गुण गान किया और हर्षाये ॥
है धन्य धन्य योगीश तुम्हें, नहीं तुमसा कोई वीर यति ॥इस०५७॥
यह अद्भुत शक्ति तुम्हारी हैं, खडगासन ध्यान लगाया है।
नहीं किया असन, नहीं किया शयन, वर्ष एक होने को आया है ॥
हे नासा दृष्टि विशिष्ट तेरी, इस कारण तुम हो वीर यति ॥इस०५८॥
तप सौम्य मुद्रा के प्रभाव से, हुए वन चर मित्र परस्पर में।
आते दर्शन को जितने जन, सब करते चर्चा परस्पर में।
है मेरु समान लगे निज ध्यान, नहीं तुमसा कोई वीर यति ॥इस०५९॥
हो तुम्ही अग्रणी तप में भी, और ज्ञान अग्रणी तुम्ही ही हो
हो तुम्ही नाथ जग में प्रवर, और ज्ञान दीप भी तुम्ही हो ॥
अब छोड़ो विकल्प सभी मन से, शीघ्र बनो शिव रमणी पती ॥६०॥
था जो विकल्प प्रभु के मन में, वो एक समय में विलीन भया।
क्षपक श्रेणी पर आरुढ भये, प्रभु ने निज में निज को पाय लिया ॥
चार घातियां कर्म विनष्ट किये केवल ज्ञान प्रगट हो गया तभी ॥६१॥
रची गंध कुटी आ देवों ने, इन्द्रादिक सभी मिलकर आये।

नर नार और भ्राता दिक ने, श्रद्धा भक्ति से गुण गाये।
पश्चात् सभी ने शुद्ध भाव से, प्रभु की पूजा स्तुतिकरी ॥इस०६२॥
प्रभु मुख से वाणी खिरने लगी, धर्मामृत की अति वृष्टि हुई।
यह जगत अनादि स्वयं सिद्ध, करता हर्ता है कोई नहीं ॥
छः द्रव्य, सप्त तत्व, पुण्य, पाप, चेतन्य शक्ति बस जीव में ही ॥६३॥
जीव कर्म संयोग अनादि है, पुण्य पाप उदय में जब आता।
हर्ष विषाद करे जन इसमें, कर्म बन्ध इससे होता ॥
काललब्धि हो करे पुरुषार्थ, तो सम्यग्दर्शन की हो प्राप्ती ॥६४॥
सम्यक भेद विज्ञान को लह कर के, पंच अनुव्रत धारण करना।
स्वाध्याय नित ही करके, आत्म चिन्तन भी करना ॥
इच्छाओं का निरोध करो, निश दिन त्यागों में त्याग है श्रेष्ठ यही॥६५॥
श्रावक मुनि धर्म द्वय विधि यथा शक्ति पालन करना।
सम्यक दर्शन ज्ञान चरण से ही मोक्ष मार्ग की सार्थकता ॥
कर्मो का संवर होने पर ही, कर्म कालिमा छय हो असमय में ही ॥६६॥
धर्म अहिंसा स्यादवाद में, जैन धर्म की है प्रमुखता।
दश लक्षण धर्म उत्तम क्षमादि, चिन्तन द्वादस अनुप्रेक्षा करना ॥
वैराग्य भाव में होकर दृढ़ तुम बनो दिगम्बर जैन मुनी ॥इस०६७॥
अट्ठाईस मूल गुण धारण कर, सम्यक चारित्रांगीकार करो।
आत्म ध्यान में रत होकर, कर्मो का संवर निर्जरा करो ॥
पश्चात् क्षपक श्रेणी चढ़कर पावोगे आनन्द सिद्ध गति ॥इस०६८॥
कुछ वर्ष आपने कर विहार, धर्मामृत था बरसाया।
भवदधि पार हुए जन भारी, जिन मोक्ष मार्ग था अपनाया ॥
फिर आये प्रभु कैलाश शिखर, तुम धन्य २ श्री बाहुबली ॥इस०६९॥
अर्न्तमुहूर्त का योग निरोध किया,
फिर चार अघातियां कर्म का नाश किया।
पंचाक्षर लघु समय में अयोग केवली हो,
सिद्ध शिला को प्रयाण किया ॥
तुम परम सिद्ध पद प्राप्त किया, हो धन्य २ बाहुबली ॥इस०७०॥
प्रतिबिम्ब तुम्हारा अति मनोहर, श्रवण बेल गोल में है।
सत्तावन फुट ऊंचा अति ही सुन्दर, सौम्य भव्याकृति प्रवर है ॥
नर नारी सभी दर्शन को आये, हो धन्य २ श्री बाहुबली।
इस युग में हुए श्री बाहुबली ॥७१॥